श्रीरामकृष्ण-विवेकानंद भावधारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

विवेक शिखा

वर्ष-९ अप्रैल-१९९० अंक-४

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर, छपरा-८४१३०१ (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

५१. श्री बी० भी नागोरी कलकत्ता (पं० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार वर्मा - समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री चिनुभाई भलाभाई पटेल -खेड़ा (गुजरात)
५४. श्री एस० सी० डाबरीवाला -कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण दत्ता जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री वृजेश चन्द्र बाजपेयी जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ—कलकत्ता (प० बं०)
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्यायएलेन गंज, इलाहाबाद
५९. श्री वसन्त लाल जैन - कैथल (हरियाणा)
६०. डॉ० श्यामसुन्दर बोस—दूधपुरा बाजार (समस्तीपुर)
६१. श्री केशव दत्त वशिष्ठ - हिसार (हरियाणा)
६२. श्री के० सी० बागरी—कलकत्ता (प० बंगाल)
६३. मधु खेतान—कलकत्ता (प० बंगाल)
६४. प्रधान अध्यापिका—डोरांडा गर्ल्स हाई स्कूल, राँची
६५. रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम—मद्रास
६६. श्री विनयशंकर सिन्हा—दाऊदपुर, छपरा
६७. रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम—इलाहाबाद
६८. श्रीमती मीरा मित्रा—इलाहाबाद
६९. स्वामी शान्तिनाथानन्द—रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद
७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे—दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी उत्तरकाशी (उ० प्र०)
७२. श्री के० अनूप—रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. गंगा सिंह महाविद्यालय—छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा - छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कु०प्रभाकर राव शंखपाल (महाराष्ट्र)
७६. श्री विजय कुमार सिंह, झुमरीतिलैया (बिहार)
७७. श्री रघुनन्दन सेठी, कोटा, (राजस्थान)
७८. श्री भृगुनाथ प्रधान, जमशेदपुर (बिहार)
७९. डॉ० अमरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)
८०. श्री रविशंकर पारीक ललित, जयपुर (राजस्थान)
८१. श्री सनत कुमार दुबे - सिवनी मालवा (म०प्र०)
८२. डॉ. आशीष कु. बनर्जी-रामकृष्ण मिशन, वाराणसी
८३. श्री चन्द्र मोहन—टुंडला (उ. प्र.)
८४. श्री बी. एल गुप्ता—मानवार (म. प्र.)
८५. डॉ. टी. जे. हेमनानी—नागपुर (महाराष्ट्र)
८६. डॉ. एस. एम. सिंह—इलाहाबाद

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष — ९ | अप्रैल—१९९० | अंक — ४

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा' ॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	२०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

एक बार राम वन में भ्रमण करते हुए पम्पा सरोवर के किनारे आए और अपने तीर-धनुष को किनारे जमीन में गाड़कर पानी पीने के लिए सरोवर में उतरे। ऊपर आकर उन्होंने देखा कि उनके वाण से एक मेढ़क बिंधकर लहूलुहान हो पड़ा है। राम ने अत्यन्त दुःखी हो उससे कहा, "तुमने आवाज क्यों नहीं की ? तुम चिल्लाते तो मैं जान जाता कि यहाँ तुम हो, तब तुम्हारी यह दशा न होती !" मेढ़क बोला, "राम, जब मैं संकट में पड़ जाता हूँ तब 'हे राम, रक्षा करो' कहकर पुकारता हूँ। अबकी जब राम ही मार रहे हैं, तब और किसे पुकारूँ ?"

(२)

श्रीरामकृष्ण के देह त्याग के दो दिन पहले, जब उनकी देह केवल हड्डियों के ढाँचे में परिणत हो गई थी, उस समय नरेन्द्र नाथ के मन में विचार उठा कि 'इस असह्य पीड़ा की अवस्था में यदि ये कहें कि मैं ईश्वर का अवतार हूँ, तो मैं उस पर विश्वास करूँ।' और आश्चर्य की बात है, ठीक उसी क्षण श्रीरामकृष्ण एकाएक बोल उठे, "जो राम (बना था), जो कृष्ण (बना था), वही इस बार रामकृष्ण बनकर इस देह में प्रत्यक्ष अवतीर्ण हुआ है—तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं।"

(३)

एक ही ईश्वर को वेदान्तवादी ब्रह्म कहते हैं, योगी आत्मा कहते हैं और भक्त भगवान कहते हैं। एक ही ब्राह्मण जब पूजा करता है तो पुजारी कहलाता है और जब रसोई बनाता है तो रसोइया।

श्रीरामचन्द्र स्तुतिः

नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं ॥
भजामि ते पदाम्बुजं। अकामिनां स्वधामदं ॥१॥
निकाम श्याम सुन्दरं। भवाम्बुनाथ मन्दरं ॥
प्रफुल्ल कंज लोचनं। मदादि दोष मोचनं ॥२॥
प्रलम्ब बाहु विक्रमं। प्रभोऽप्रमेय वैभवं ॥
निषंग चाप सायकं। धरं त्रिलोक नायकं ॥३॥
दिनेश वंश मंडनं। महेश चाप खंडनं ॥
मुनीन्द्र संत रंजनं। सुरारि वृंद भंजनं ॥४॥
मनोज वैरि वंदितं। अजादि देव सेवितं ॥
विशुद्ध बोध विग्रहं। समस्त दूषणापहं ॥५॥
नमामि इंदिरा पतिं। सुखाकरं सतां गतिं ॥
भजे सशक्ति सानुजं। शची पति प्रियानुजं ॥६॥
त्वदंघ्रि मूल ये नराः। भजंति हीन मत्सराः ॥
पतंति नो भवार्णवे। वितर्क वीचि संकुले ॥७॥
विविक्त वासिनः सदा। भजंति मुक्तये मुदा ॥
निरस्य इंद्रियादिकं। प्रयांति ते गति स्वकं ॥८॥
तमेकमद्भुतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुं ॥
जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं ॥९॥
भजामि भाव वल्लभं। कुयोगिनां सुदुर्लभं ॥
स्वभक्त कल्प पादपं। समं सुसेव्यमन्वहं ॥१०॥
अनूप रूप भूपतिं। नतोऽहमुर्विजा पतिं ॥
प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे ॥११॥
पठंति ये स्तवं इदं। नरादरेण ते पदं ॥
व्रजंति नात्र संशयं। त्वदीय भक्ति संयुताः ॥१२॥

इति श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदासकृता श्रीरामचन्द्रस्तुतिः सम्पूर्णा।

❀

अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

एक सेठजी स्टेशन पहुँचे, टिकिट खरीदी और पता लगाया तो मालूम हुआ कि ट्रेन एक घंटा लेट है। सोचा, क्यों न पास के आश्रम में चला जाय। विश्राम भी हो जाएगा और सत्संग भी— एक पंथ दो काज। दोपहर का समय था। और जब सेठजी आश्रम पहुँचे, स्वामीजी मध्यान्ह भोजन के बाद विश्राम के लिए जाने वाले थे। सेठजी ने विनम्रतापूर्वक प्रणाम किया एवं परिचय दिया। स्वामीजी ने पूछा—"कैसे आना हुआ?" सेठजी ने प्रसंग आरंभ करने का प्रयास करते हुए कहा, "महाराज एक शंका है।" स्वामीजी ने कहा, "सभी शंकाओं का समय होता है। आप थोड़ा विश्राम करें, या दो घंटे बाद आयें। मैं भी विश्राम कर लूँ, उसके बाद आपकी शंका का समाधान कर दिया जायेगा।" तब सेठजी ने आने का दूसरा कारण बताते हुए कहा, "बात यह है, स्वामीजी, कि ट्रेन एक घंटा लेट है।" "ओहो! अब समझा" स्वामीजी ने मुस्कुरा कर कहा—आप तो व्यापारी हैं। व्यवसाय के नियम जानते हैं। आपके ही नियमों के अनुसार अगर आप दो घंटे बाद आकर प्रश्न करें तो दो चार फलों की प्रणामी में ही शंका का समाधान हो जायेगा। लेकिन अभी तो प्रश्न के लिए ढाई सौ रुपये की फीस लगेगी।"

यह है कलियुग के धर्म जगत् का एक दृश्य। कहावत है, "जैसा गुरु, वैसा चेला।" लेकिन यदि सचमुच धार्मिक होना चाहते हैं, तो हमें भी सत् शिष्य होना होगा। सत् शिष्य बनने के बाद हमें गुरु को प्रसन्न करना होगा। धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करनी होगी और गुरु द्वारा ली गयी योग्यता की परीक्षा में उत्तीर्ण होना होगा। उपनिषदों में गुरु-शिष्य-संवाद की यही परंपरा हम प्राप्त करते हैं। नचिकेता को तीन दिन तक गुरु यमराज के द्वार पर निराहार प्रतीक्षा करनी पड़ी थी, तथा बाद में अपनी बुद्धिमत्ता एवं मेधा द्वारा उन्हें प्रसन्न करना पड़ा था। तत्व ज्ञान प्रदान करने के पूर्व यमराज ने नचिकेता को प्रलोभित कर परीक्षा भी ली थी, जिसमें वह बालक उत्तीर्ण हुआ था। प्रश्नोपनिषद् के पाँच गृहस्थ भक्तों को गुरु पिप्पलाद से प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के पूर्व एक वर्ष तक गुरु के आश्रम में ब्रह्मचर्य व्रत पालन करते हुए निवास करना पड़ा था। इन्द्र और विरोचन को तो प्रजापति ने बत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत पालन करते हुए आश्रम में रहने का आदेश दिया था।

ज्ञान योग की साधना का प्रारंभ सामान्यतः जिज्ञासा अथवा प्रश्न के द्वारा होता है। इसी को इंगित करने के लिए ब्रह्मसूत्र का प्रारंभ "अथातो-ब्रह्म जिज्ञासा" के द्वारा होता है, जबकि पातंजल योग सूत्रों के प्रारंभ में "अथ योगानुशासनम्" कहा गया है। अथ-अतः ये दो शब्द इसी पूर्व तैयारी, अधिकारित्व की प्राप्ति, गुरु पसदन, परिप्रश्न, विधि आदि के द्योतक हैं। अत्यन्त मूढ़ व्यक्ति और ब्रह्मज्ञानी प्रश्न सभी के मन में उठते हैं। बच्चा भी पिता से नाना विषयों के जानने के लिए प्रश्न करता है। लेकिन दार्शनिक, अध्यात्म विषयक, अथवा जीवन के शाश्वत प्रश्न कुछ लोगों के मन में ही उठते हैं,

और वह भी मन की परिस्थिति-विशेष में। 'मानसिक उथल-पुथल अथवा विपत्तियों एवं कठिन परीक्षा के क्षणों में अनेक लोगों के मन में ऐसे प्रश्न उठ सकते हैं। लेकिन यदि व्यक्ति संवेदनशील न हो, अथवा उसका मन सात्विक न हो, तो ये प्रश्न उत्तर प्राप्ति तक बने नहीं रह पाते, पुन: दब जाते हैं।

प्रश्न तभी साथक होता है जब प्रश्नकर्त्ता उत्तम अधिकारी हो, तथा प्रश्न उत्तम हो तथा प्रश्न का उत्तर देने वाला भी श्रेष्ठ ज्ञाता हो। शास्त्रों में ज्ञानाधिकारी के लक्षणों का वर्णन पाया जाता है।

उपनिषदों में अधिकारी के लक्षणों को निषेध के द्वारा निम्न प्रकार से बताया गया है :

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो ना समाहित :
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्
नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात्।
एतैरूपा यैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा-विशते ब्रह्मधाम ।।

अर्थात् जो दुश्चरित्रता से विरत नहीं हुआ है; जो अशान्त है, जो असमाहित है, जिसका मन अशान्त है, ऐसा व्यक्ति प्रज्ञा की सहायता से इस ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकता। यह आत्मा बलहीन के द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती, न प्रमाद करने से और न ही लिंग रहित तप से। जो व्यक्ति उपर्युक्त उपायों से प्रयत्न करता है उसकी आत्मा ब्रह्म धाम में प्रविष्ट हो जाती है।

उपर्युक्त आदेशों के अनुसार सच्चरित्रता, इन्द्रिय एवं मन का शान्त होना, समाधान या चित्त की एकाग्रता की क्षमता मानसिक बल, प्रमाद-रहितता, तथा तप ज्ञानाधिकारी के आवश्यक सद्गुण हैं।

सच्चरित्रता —

यह तो स्पष्ट ही है कि कोई भी दुश्चरित्र व्यक्ति धार्मिक जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। धर्म एवं आध्यात्मिक जीवन के साथ अनैतिकता का सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। यह सत्य विदित होते हुए भी इसका यहाँ उल्लेख विशेष प्रयोजन से किया गया है। ज्ञान मार्ग विचार का मार्ग है। इसका मुख्य साधन है, श्रवण, मनन, निदिध्यासन। बुद्धि की तीक्ष्णता, तर्क एवं युक्तिपूर्ण विचार की सामर्थ्य इस मार्ग में नितान्त आवश्यक हैं। यह संभव है कि कोई व्यक्ति तर्क एवं युक्ति में निपुण हो, लेकिन सच्चरित्र न हो। ऐसी स्थितिमें वह युक्ति का दुरुपयोग यह कहकर कर सकता है कि दुश्चरित्रता एवं दुराचरण भी असत्य हैं, मिथ्या हैं अत: अगर मैं दुराचरण करूँ तो उसमें कोई दोष नहीं है। इस तरह का कुतर्क अनेक भ्रष्ट वेदान्ती करते हैं। यह एक बड़ी भयानक स्थिति है। वे यह भूल जाते हैं कि सच्चरित्र हुए बिना उस तीक्ष्ण बुद्धि की, जिसे उपनिषदों में सूक्ष्म एवं अग्र बुद्धि कहा गया है, प्राप्ति हो ही नहीं सकती। अत: यदि साधक ज्ञान विचार करने के बदले चरित्र निर्माण करने एवं सच्चरित्र व्यक्ति बनने का प्रयत्न करे तो वह उसके लिए अधिक श्रेयस्कर होगा। वस्तुत: चरित्र धर्म व अध्यात्म का केन्द्र बिन्दु है।

इन्द्रिय व मन का निग्रह :

इन्द्रिय एवं मन का निग्रह भी दीर्घ काल तक चित्त में सूक्ष्म तत्व विचार को बनाये रखने के लिए परमावश्यक है। गीता भागवत् आदि सभी शास्त्रों में इसको महत्व दिया गया है। स्थितिप्रज्ञ के लक्षणों का वर्णन करते हुए भगवान् बार-बार इन्द्रिय-निग्रह पर बल प्रदान करते

हैं। फिर इन्द्रियाँ स्वाभाविक रूप से बहिर्गामी होती हैं। विषयों का आकर्षण उन्हें बार-बार बाहर खींचता रहता है। जब वे बाहर विषयों की ओर जाती हैं तो मन भी उनका अनुसरण करता है। परिणामस्वरूप मन अन्तर्मुख न होकर बहिर्मुखी और "बहु शाखा" तथा विक्षिप्त हो जाता है। और ऐसा अनेकाग्र एवं विक्षिप्त चित्त तत्व-विचार नहीं कर सकता।

धर्म शास्त्रों में इन्द्रिय विषयों एवं उनके भोगों की प्रभूत निन्दा किये जाने के बावजूद अधिकांश लोग उनके आकर्षण एवं भोगजन्य क्षणिक सुख का त्याग नहीं कर पाते। यही कारण है कि हजारों में से विरले कुछ व्यक्ति अध्यात्म की ओर मुड़ पाते हैं, या अन्त तक सफल हो पाते हैं।

इन्द्रिय एवं मन के निग्रह के दो उपाय हैं, जिन्हें साथ-साथ अपनाया जाना चाहिए। वे हैं: इन्द्रिय निग्रह एवं विषय त्याग के महत्व को भली प्रकार से बुद्धि में बिठा देना और इन्द्रिय विषयों का यथा सम्भव त्याग करना। प्रथम कार्य शास्त्राध्ययन तथा निष्ठावान त्यागी तपस्वी साधकों एवं महापुरुषों के जीवन चरित्र के अध्ययन के द्वारा किया जाना चाहिए। इन्द्रिय विषयों से दूर रहने का कार्य स्वयं साधक को प्रयत्न-पूर्वक करना होगा। प्रारंभ में यदि मोटे तौर पर सभी प्रिय पदार्थों के त्याग का नियम ही बना लिया जाय तो बुरा नहीं होगा। कुछ लोग मिठाई न खाने, सिनेमा न देखने, इत्र, अगरबत्ती, सुगन्धित पुष्प आदि का उपयोग न करने, संगीत श्रवण न करने आदि के कठोर नियम बना लेते है। विभिन्न इन्द्रियों में जिह्वा और नेत्र अत्यन्त प्रबल होते हैं, और यदि इनका निग्रह करने में साधक सफल हो जाए तो अन्य इन्द्रियों का संयम आसान हो जाता है। इनसे सम्बन्धित छोटे-मोटे कुछ व्रतों का ग्रहण भी उपयोगी सिद्ध होता है। देह और इन्द्रियों के प्रति कोमलता के बदले थोड़ी कठोरता बरतना ही अधिक श्रेयष्कर है। सन्त लोग अपने शरीर और इन्द्रियों के प्रति अत्यन्त कठोर होते थे। वे न तो स्वादिष्ट भोजन करते थे, न नरम शैय्या पर सोते थे। प्रलोभन पूर्ण दृष्यों को न देखते हुए वे अपनी दृष्टि जमीन पर गड़ाये रहते थे। हम यदि इन्द्रिय व देह के प्रति इतने कठोर न भी होवें, तो भी उन्हें अनियंत्रित नहीं होने देना चाहिए। यदि कभी हम स्वादिष्ट भोजन का, रमणीय चित्र का, मधुर ध्वनि का सुख भोग रहे हों, तो कम-से-कम उसकी ओर सजग रहें, उनमें पूरी तरह डूब न जायें। यह ध्यान रहे कि हम विषय भोग कर रहे हैं, जो अहितकर हो सकता है।

"प्रत्यक्षानुभूति ही धर्म का सार है।" धर्म की उपलब्धि की जा सकती है। प्रश्न यह है कि क्या तुम इसके अधिकारी हो चुके हो ? क्या तुम्हें धर्म की सचमुच में आवश्यकता है ? यदि तुम ठीक-ठीक प्रयत्न करो, तभी तुम्हें प्रत्यक्ष उपलब्धि होगी, और तभी तुम वास्तव में धार्मिक होगे, जब तक उपलब्धि तुम्हें नहीं होती, तब तक तुममें और नास्तिक में कोई भेद नहीं। —स्वामी विवेकानन्द

(ज्ञानयोग : पृ० ९६)

मानस में राम निवास

—श्री जानकी शरण,
छपरा

भगवान् श्री राम ने पिता की आज्ञा से अयोध्या का त्याग सहज भाव से कर दिया। जैसे कोई पथिक थोड़ी देर विश्राम करने के बाद पेड़ की छाया का त्याग करता है। साथ में धर्म-प्रिया जानकी तथा लक्ष्मण भी लग गये।

'नीर के कागर ज्यों नृपचीर,
विभूषण उप्पम अंगन छाई।
अवध तजी मगबास के रूख ज्यों,
पंथ के साथी ज्यों लोग लुगाई'' ॥
संग सुबंधु पुनीत प्रिया,
मनो धर्म क्रिया धरे देह सुहाई।
राजीव लोचन राम चले तजि,
बाप को राज बटाउ की नाईं ॥
(कवितावली)

प्रभु कई बन-खण्डों को पार करते 'मग लोगन्ह सुखदेत' महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में पहुँच गये। महर्षि ने इन दिव्य अतिथियों का स्वागत किया और भगवान ने महर्षि से अपने वन-वास की अवधि व्यतीत करने के लिए उपयुक्त स्थान पूछा। महर्षि ने इस प्रश्न के उत्तर में एक व्यंग और विनोद से भरा दूसरा प्रश्न कर दिया—

'पूछेहु मोहि कि रहउँ कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहि देखावौं ठाउँ ॥'

प्रभु ! तुम तो नर-नाट्य कर रहे हो। एक अभिनेता को भले ही कुछ भी कहने-करने में संकोच न हो पर मुझे तो पूछते संकोच हो रहा है कि ऐसा भी कोई स्थान है जो तुम से रिक्त हो, जहाँ तुम्हें रहने के लिए कहा जाय !' तुम तो सर्वत्र और समान रूप से व्याप्त हो। 'प्रभु व्यापक सर्वत्र समाना' फिर भी—

'तदपि करहिं सम विषम विहारा।
भगत अभगत हृदय अनुसारा ॥

सर्वत्र समान रूप से व्याप्त होने पर भी तुम्हारा विहार सर्वत्र समान नहीं है। स्थान-भेद से विहार-भेद लक्षित होता है। अतः प्रभु ! आपके विहार योग्य स्थान की ओर ही संकेत किया जा सकता है, निवास तो आपका सर्वत्र समान रूप से है ही। इसके बाद महर्षि ने चौदह तरह के आचरण वाले व्यक्तियों का निर्देश किया जिनके हृदय और मन में प्रभु विराजें। ये चौदह स्थान भक्ति के चौदह सोपान हैं। कोई भी मनुष्य अपने चरित्र को महर्षि के निर्देशानुसार ढाल कर चौदह सोपानों पर आधारित भक्ति-मन्दिर का निर्माण कर सकता है जो प्रभु की विहार-स्थली है, जहाँ सारे लोगों को विश्राम देने वाले प्रभु को भी विश्राम मिलता है, जैसे दिन भर का भूला भटका व्यक्ति अपने घर में लौट आने पर विश्राम पाता है। चौदहवां भवन है—

''जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु,
तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन,
सो राउर निज गेहु ॥

देवर्षि नारद के भक्ति-सूत्र में प्रतिपादित नवधा-भक्ति—

'श्रवणं कीर्तनं, हरि स्मरणं,
विष्णु पाद सेवनं।
अर्चनं वंदनं, दास्यं,
साख्यं आत्म निवेदनं।

या स्वयं प्रभु द्वारा सबरी के प्रति इंगित नवधा भक्ति—

'नवधा भक्ति कहौं तोहि पाहीं।
सावधान, सुनु धरु मन माहीं॥

'प्रथम भक्ति संतन कर संगा' से लेकर 'नवम सरल सब सन छलहीना'' तक प्रतिपादित नव भक्तियों का ही यहाँ विश्लेषण कर के चौदह भवनों के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

एक बात यहाँ विशेष रूप से ध्यान देने की है। ये चौदहों भवन या नवों प्रकार की भक्ति एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न या स्वतंत्र नहीं हैं। ये सभी एक-दूसरे के पूरक हैं। इनमें से एक की प्राप्ति होने पर अन्य सब प्राप्त हो जाते हैं। इसीलिए प्रभु ने सबरी से कहा—

"नव महं एकउ जिन्हके होई।
नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे···

अब हम महर्षि बाल्मीकि द्वारा इंगित भवनों का दर्शन करें, क्योंकि इनमें झांकने पर प्रभु स्वयं दीख सकेंगे।

प्रथम भवन—

'जिन्ह के श्रवण समुद्र समाना।
कथा तुम्हारि सरित सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे।
तिन्ह के हिय तुम्ह कहं गृह रुरे॥

अर्थात्- हे प्रभु! जिनके कान समुद्र के समान हों। तुम्हारी भिन्न-भिन्न कथाएँ भिन्न-भिन्न सरिताएँ हों। जैसे—नदियों द्वारा निरंतर जल भरते रहने पर भी समुद्र खाली ही रहता है, वैसे ही आपकी कथाएँ निरंतर सुनते रहने पर भी जिनके कान तृप्त न होते हों, उनका हृदय आप के लिए सुन्दर भवन है।

भगवान शंकर ने मैया पार्वती के सारे प्रश्नों के उत्तर देने के बाद पूछा—

'कछुक राम गुन कहेउं बखानी।
अब का कहौं सो कहहु भवानी॥

मैया पार्वती भगवान शिव के मुखारविंद से निर्झरित कथामृत का पान करने में तल्लीन थीं। इस प्रश्न से चौंकीं। क्या प्रभु अब राम कथा बंद करने जा रहे हैं! उन्होंने अनुनयपूर्ण वाणी में कहा—

'नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर।
स्रवन पुटन्ह मन पान करि नहिं अघात मति धीर॥

रामचरित जो सुनत अघाहीं।
रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं॥

मैया पार्वती एक आदर्श श्रोता हैं राम कथा की। राम कथा चाहे जितनी बार भी सुनी जाय उसमें अभिनव रस की प्राप्ति होती है और राम कथा सुनने की लालसा में वृद्धि होती है। राम-रस के सामने सभी रस सीठी जो हो जाते हैं!

'जौ मोहि राम लागतें मीठे।
तौ नवरस षटरस रसअन रस ह्वै जाते सब सीठे॥

हमारे यहाँ एक तेजस्वी राजा—पृथु नाम से विख्यात हो चुके हैं। इन्हें विष्णु का अवतार ही माना जाता है। इन्हीं के नाम पर इस वसुंधरा का नाम पृथ्वी है। इनकी कथा विस्तार से श्री मद्भागवत में पायी जाती है। इन्होंने तपस्या की और वरदान में दस हजार कान मांगे। दो कानों से भगवान की कथा सुनते नहीं बनती थी। अब वे दस हजार कानों से भगवान की रसमयी

कथा का पान करेंगे। ऐसी अनुपम थी इनकी कथा-लिप्सा।

भगवान शंकर जहाँ एक ओर अद्वितीय वक्ता हैं राम कथा के वहीं एक अद्भुत श्रोता भी हैं। राम कथा सुनने के लिए ये उत्तरांचल स्थित सुदूर दक्षिण में कुंभज ऋषि के आश्रम तक की यात्रा करते हैं।

'एक बार त्रेता युग माहीं।
संभु गये कुंभज रिषि पाहीं॥'
... ..
राम कथा मुनिवर्ज बखानी।
सुनी महेश परम सुख मानी॥

स्वयं प्रभु राम भी अपनी कथा बड़े चाव से सुनते हैं

'वेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं।
सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥'

शंकर भगवान तो सबको उपदेश देते हैं -

'रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि।
संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥'

सनकादि को तो रामकथा सुनने का व्यसन पड़ा हुआ है।

'आसा वसन व्यसन यह तिन्हहीं।
रघुपति चरित होहि तहं सुनहीं॥'

गीता भी कहती है—

'अन्ये त्वेम जानन्तः श्रुत्वा अन्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुति परायणाः॥

श्रवण रूपी इस प्रथम सोपान पर ही राम-निवास की सुदृढ़ नींव आरोपित है। इसीलिए गोसाईं जी ने वक्ता को रखवाला और श्रोता को इस मानस का मालिक बताया—

'जे गावहि एहि चरित संभारे।
ते एहि ताल चतुर रखवारे॥
सदा सुनहि सादर नर नारी।
ते सुर वर मानस अधिकारी॥

दूसरा भवन—

'लोचन चातक जिन्ह करि राखे।
रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी।
रूप विष्णु जल होहिं सुखारी॥
तिन्हके हृदय सदन सुखदायक
बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥

अर्थात्, जिन्होंने अपनी आँखों को चातक बना रखा है। भगवत् दर्शन रूपी जलधार की जिन्हें सतत अभिलाषा है। जो अन्य रूपों का निरादर कर श्रीराम के रूप की एक बूंद से सुखी हो जाते हैं। हे राम ! तुम अपने भाई और पत्नी सीता के साथ उनके सुखद हृदय-सदन में वास करो ! मानव शरीर में कर्णों के बाद नेत्रों का महत्व है—भगवत प्राप्ति में। जैसे कानों को भगवत कथा के अतिरिक्त और कुछ भी अच्छा न लगे वैसे ही नेत्रों को राम-रूप के अतिरिक्त और कोई रूप न भावे। यह संदेश है गोसाईं जी का। श्री राम चरित मानस में इस भाव के समर्थन में एक अद्भुत प्रसंग आता है। सुतीक्ष्णजी श्रीराम के अनन्य भक्त हैं। प्रभु उनके आश्रम में पधारते हैं। सुतीक्ष्ण जी राम की मूर्ति हृदय में बसाये ध्यानस्थ हैं। प्रभु उन्हें जगाने की चेष्टा करते हैं पर बिफल होते हैं।

'मुनिहि राम बहु भांति जगावा।
जाग न ध्यान जनित सुख पावा॥

प्रभु की एक बात सुनी—

'भूप रूप तब राम दुरावा।
हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा॥
मुनि अकुलाइ उठा तब कैसे।
बिकल हीन मनि फणिवर जैसे॥

सुतीक्ष्णजी को चातक वृत्ति प्राप्त है। वे भगवान के भूप-रूप के रसिक हैं। चतुर्भुज रूप

भी प्रभु का ही है, पर उससे क्या ? सभी जल जल ही है। किसी जल से प्यास बुझाई जा सकती है। पर चातक को कौन समझाये ?

''बध्यो बधिक पर्‌यो पुण्य जल,
उलट उठायी चोंच।
तुलसी चातक प्रेम पट,
मरतहुँ परी न खोच।। (दोहावली)

यह एकनिष्ठ भक्ति है। यह अनन्य भक्ति है। स्वाति बून्द के सामने गंगा जल की भी अवहेलना :

तुलसी चातक देत सिख,
सुतहिं बार ही बार।
तात न तर्पण कीजिये,
बिना बारिधर वारि।। (दोहावली)

तीसरा भवन –

'जसु तुम्हार मानस बिमल,
हंसिनि जीहा जासु।
मुकुताहल गुनगन चुनइ,
राम बसहु हियँ तासु।।

अर्थात् प्रभु के जल रूपी मानसरोवर में रहने वाली जिसकी जिह्वा रूपी हंसिनी प्रभु के गुण रूपी मुक्ताओं को चुने उसके हृदय में प्रभु बास करें।

श्रवण और नेत्र के बाद जिह्वा (वाणी) का स्थान है, जिसकी सदुपयोगिता पर भगवान की प्राप्ति निर्भर करती है। वैसे तो सभी ग्यारह इन्द्रियाँ अर्थात् पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और एक मन का सदुपयोग करना ही भगवत् प्राप्ति के सर्वोत्तम साधन हैं पर इनमें भी तीन अर्थात् कर्ण, नेत्र और वाणी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनका ही दुरुपयोग भी अधिक होता है। गोसाई जी का यह सुनिश्चित मत है कि कान से भगवान की कथा सुनने, नेत्रों से उनके रूप का दर्शन करने और जिह्वा से उनका गुणगान करने के अतिरिक्त सभी कार्य इनका दुरुपयोग है। वे तो कहते हैं—

'राम नाम बिनु गिरा न सोहा।
देखु विचार त्यागि मद मोहा।
बसनहीन नहिं सोह सुरारी।
सब भूषण भूषित बर नारी।।

प्रभु गुनगान के अलावा अपनी प्रतिभा का खर्च करने वाले कवियों पर आक्षेप करते हुए गोसाई जी ने लिखा है—

'कीन्हे प्राकृत जन गुनगाना।
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना।।

उनका तो निश्चित मत है।

'भनिति विचित्र सुकवि कृत जोऊ।
राम नाम बिनु सोह न सोऊ।।
बिधु बदनी सब भांति संवारी।
सोह न वसन बिना वर नारी।।

अच्छी-से-अच्छी कविता, बडे-से-बड़े कवि के द्वारा रचित होने पर भी श्लाध्य नहीं है अगर उसमें राम चर्चा नहीं है इसके विपरीत—

'सब गुन रहित कुकवि कृत बानी।
राम नाम जस अंकित जानी।।
सादर कहहिं सुनहि बुध ताही।
मधुकर सरिस संत गुण ग्राही।।

राम नाम से जिह्वा अनुशासित एवं सफल होती है। वाणी का अपव्यय सबसे बड़ी क्षति है। गोसाई जी का तो संकल्प है

'श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं,
रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नयन विलोकत औरहिं,
सीस ईस ही नैहौं। (विनय)

चौथा भवन—

'प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा ।
सादर जासु लहई नित नासा ।।
तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं ।
प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं ।।
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी ।
प्रीति सहित करि विनय बिसेषी ।।
कर नित करहिं राम पद पूजा ।
राम भरोस हृदय नहीं दूजा ।।
चरन राम तीरथ चलि जाहीं ।
राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ।।

अर्थात्—जिसकी नाक प्रभु के प्रसाद की सुगंध सादर ग्रहण करती है, जो प्रभु को अर्पण किया हुआ भोजन, वस्त्र और आभूषण धारण करते हैं, जो देवता, गुरु और ब्राह्मण को देखकर सीस झुकाते हैं और प्रीति सहित उनकी प्रार्थना करते हैं, जो हाथों से नित्य राम चरणों की पूजा करते हैं और उन्हीं का भरोसा करते हैं और जो अपने चरणों से राम-तीर्थों में जाते हैं, हे राम ! तुम उनके मन में बसो ।

इसमें चौथी ज्ञानेन्द्रिय घ्राण के सदुपयोग की वात वताने के वाद मुख, सिर, कर और चरणों के उपयोग की वात वताते हैं । इन पाँचों अर्धालियों में एक ही वात परिलक्षित है । हमारा हर कार्य भगवद् बुद्धि से भगवदार्पण हो ।

भोजन हरेक व्यक्ति करता है । अगर उसे भगवान को अर्पित करने के वाद प्रसाद स्वरूप ग्रहण किया जाय तो नुकसान तो कुछ भी नहीं पर प्रभु की भक्ति हो जाती है । भगवान बड़े भक्त वत्सल हैं । अपनी अमूल्य भक्ति को क्रिया-प्रधान नहीं वना कर उन्होंने भावना-प्रधान वना दिया है । भावना में कोई खर्च नहीं पड़ता है । कपड़ा अच्छा बुरा सभी पहनते हैं । उन्हें भी प्रभु का प्रसाद समझ कर पहनें । हर कार्य भगवान की प्रसन्नता के हेतु किया जाय । हाथ से और पाँव से भी ।

'मदर्थमपि कर्माणि कुर्वण्सिद्धिमवाप्स्यसि'
(गीता)

पांचवा राम-निवास—

'मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा ।
पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा ।।
तरपन होम करहिं विधि नाना ।
बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना ।।
तुम्ह तें अधिक गुरुहि जियँ जानी ।
सकल भायँ सेवहिं सनमानी ।।
दो.—सबु करि माँगहि एक फलु,
राम चरन रति होउ ।
तिन्ह कं मन मंदिर बसहु,
सिय रघुनंदन दोउ ।।

अर्थात्—जो तुम्हारा मंत्र नित्य जपते हैं और परिवार के साथ तुम्हारा पूजन करते हैं, शास्त्रोक्त विधि से तर्पण-होम करते हैं तथा ब्राह्मणों को भोजन करा कर वहुत दान देते हैं, प्रभु से भी अधिक गुरु को जानते हुए उनकी सब प्रकार से सेवा करते हैं और यह सब करने का फल भगवान के चरणों में प्रेम मांगते हैं, हे सीता रामजी ! आप दोनों उनके मन मंदिर में बसें ।

यहाँ तात्पर्य्य है कि सभी साधन ठीक हैं । सभी साधन किये जाएँ पर उद्देश्य हो भगवत् पदारविंद में रति । जप किये जाएँ, तर्पन, होम विप्र भोजन, गुरु सेवा सब किये जाएं पर ये सब साधन के रूप में लिये जाएँ, साध्य नहीं । साध्य तो एक मात्र प्रभु की भक्ति अर्थात् उनके चरणों में रति है ।

'सम यम नियम फूल—फल ज्ञाना ।
हरि पद रति रस वेद बखाना ।'

किसी पेड़ में फूल लगें, फल भी लग जायं पर उन फलों में रस न हो तो किस काम का ?

वैसे ही कोई व्यक्ति शम यम नियम का पालन करे, ज्ञानी भी हो जाय पर भक्ति न पावे तो वह नीरस और निस्सार ही है।

'जह लगि साधन वेद बखानी।
सब कर फल हरि भगति भवानी।"

छठा राम-निवास—

'काम कोह मद मान न मोहा।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह के कपट दंभ नहिं माया।
तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया॥

अब तक गोसाईं जी भिन्न-भिन्न इन्द्रियों को रामाभिमुख बनाने की बात कर रहे थे। अब वे अंतःकरण चतुष्टय अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को ऐसा पात्र बनाने की प्रक्रिया बता रहे हैं जहाँ भगवान राम का निवास होता है। काम, क्रोध, मद, मान, लोभ, क्षोभ, राग, द्रोह, इत्यादि से मुक्त अन्तःकरण ही भगवान को रख सकने में सक्षम हैं।

७वाँ राम निवास —

सब के प्रिय सबके हितकारी।
दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय वचन विचारी।
जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहिं छाड़ि गति दूसरि नाहीं।
राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥

भगवान् श्री राम उन्हीं सरल चित्त भक्तों के हृदय में निवास करते हैं जिन्होंने अपने को दुःख-सुख, प्रशंसा-गाली आदि द्वंद्वों से मुक्त कर लिया है। ऐसा वे ही कर सकते हैं जिन्होंने सारे भरोसों को त्याग कर जागते-सोते प्रभु की शरण ग्रहण कर ली है।

८वाँ राम-भवन —

'जननी सम जानहिं पर नारी।
धनु पराव विष तें विष भारी॥
जे हरषहिं पर संपति देखी।
दुखित होहिं पर विपति विसेषी॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रान पिआरे।
तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे॥

हम सब कुछ पढ़ें-लिखें, जानें सुनें पर अगर उन्हें चरित्र में न ढाल सकें तो वह सब व्यर्थ है।

'परमारथ पहिचानि मति लसति विषय लपटानि।
निकसि चिता ते अधजली। मानहुं सती परानि॥
(दोहावली)

राम का चरित्र परम उज्ज्वल है। कैसा आत्म विश्वास है!

'मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी।
जिन्ह सपनेहुं पर नारि न हेरी॥

धन के प्रति कैसी वितृष्णा है; देखिए—

'पितु, आयसु भूषण वसन, तात तजे रघुबीर।
बिसमय हरषन हृदय कछु पहिरे बलकल चीर॥

कहा गया है—

'मातृवत् पर दारेषु पर द्रव्येषु लोष्ठवत्।'

गोसाईं जी कहते हैं कि राम को प्राप्त करने के लिए पर द्रव्य को लोष्ठवत् (ढेला की तरह) नहीं वरन् विषवत् त्याग करना चाहिए। धन पराव विषते विष भारी।'

९वां राम-मंदिर—

'स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्हके सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्हके बसहु सीय सहित दोउ भ्रात॥

हे प्रभु! जो तुम्हे ही 'अपना सभी अर्थात् स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु भी मानते हों उनके मन-मंदिर में आप दोनों भाई और माता श्री सीता जी प्रतिष्ठित हों।

जीवाचार्य्य लक्ष्मण जी ने भगवान राम से कहा—

'गुरु पित, मात न जानउं काहू।
कहउं सुभाउ नाथ पतिआहू।।
मोरे सबुई एक तुम्ह स्वामी।
दीन बंधु उर अंतर जामी।।

सुमित्रा जी कहती हैं—

'पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते।
सब मानिअहिं राम के नाते।।

गोसाईं जी का मत है—

'नाते नेह राम के मनियत
सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं
अंजन कहाँ आंख जेहि फूटै,
बहुतक कहौं कहाँ लौं।

१०वां राम- निवास—

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं।
विप्र धेनु हित संकट सहहीं।।
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका।
घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका।।

संत ऐसे ही होते हैं हंस की तरह—

'संत हंस गुन गहहिं पय परि हरि वारि विकारि।

या 'विधि प्रपंच गुन अवगुन साना' लेकिन जो सर्वत्र से गुण का चयन कर पाते हैं राम उनके मन में रहते हैं।

११वां राम-निवास—

'गुन तुम्हार समुझई निज दोसा।
जेहि सब भांति तुम्हार भरोसा।।
राम भगत प्रिय लागहिं जेही।
तेहि उर बसहु सहित बैदेही।।

यह दैन्य की पराकाष्ठा है। मानव स्वभाव है सफलता का श्रेय अपने को देने का और विफलता भगवान के मत्थे मढ़ने का। लेकिन भगवान तो उसके हृदय में वास करते हैं जो सफलता भगवान की कृपा से माने और असफलता में अपनी कमी देखे।

१२वां राम-निवास—

जाति पांति धनु धरम बड़ाई।
प्रिय परिवार सदन सुखदाई।।
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई।
तेहि के हृदय रहहु रघुराई।।

९वे भवन के लक्षणों का यहाँ और स्पष्टीकरण है। जो भी राम की प्राप्ति में बाधक हो उनका त्याग करना है।

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरीसम यद्यपि परम सनेही।

जाति पांति यहाँ तक कि परिवार छोड़ कर भी राम को हृदय से लगाये रखे जैसे भक्तिमती मीरा ने किया।

१३वां राम-निवास—

सरग नरकु, अपबरगु, समाना।
जहं तहं देख धरें धनु बाना।।
करम वचन मन राउर चेरा।
राम करहु तिन्ह के उर डेरा।।

बड़ी ही सुन्दर बात है। जिन्हें सारा विश्व राममय दीख पड़ता है वे सबको मन-वचन से प्रणाम करते हैं।

'सियाराम मय सब जग जानी।
करों प्रनाम कर्म मन बानी।।

स्वर्ग, नरक सर्वत्र धनुष बाण धारण किये हुए हमारे प्रभु ही तो विराजमान हैं। कर्म वचन मन से उनकी सेवा करना ही हमारे जीवन का लक्ष्य है।

१४वां राम-भवन—

'जाहि न, चाहिअ कबहुं कछु,
तुम्ह सन सहज सनेह।
बसहु निरंतर तासु मन।
सो राउर निज गेहू।।

महर्षि वाल्मीकि द्वारा निर्दिष्ट न सिर्फ यह अंतिम भवन है वरन् श्री राम का सर्वोत्कृष्ट निवास स्थान है। जहाँ वे स्थायी रूप से वास करते हैं।

नरावतार अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा—हे माधव ! नहीं चाहते हुए भी मनुष्य पाप में क्यों प्रवृत्त हो जाता है मानो कोई बरबस उसे पाप में लगा रहा हो !

'अथकेन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥

(गीता)

भगवान ने बताया —काम ही सभी पापों की जननी है।

"काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥

गोसाईं जी ने स्पष्ट किया— काम और राम एक साथ नहीं रहते।

जहाँ काम तहं राम नहिं, जहां राम नहिं काम।
तुलसी कबहु कि रहि सके, रवि रजनी इक ठाम ॥

(दोहावली)

निष्काम हृदय ही प्रभु की विश्राम स्थली है। विश्राम स्थली का महत्व घर से भी अधिक है। भगवान् स्वयं कहते हैं—

'बचन कर्म मन मोहि गति,
भजन करहि निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महं,
करउं सदा विश्राम ॥

श्रीरामकृष्ण के चरण कमलों में राजस्थान की एक पावन आहुति

डा० नन्दिता भार्गव
११०, आदर्श नगर, अजमेर

श्री रामकृष्ण के महामहिमामय, अतुल ज्ञान-शील, अद्भुत वक्ता एवं वीर संन्यासी शिष्य स्वामी विवेकानन्द का नाम विश्व विख्यात है। उनके अन्यान्य संन्यासी शिष्यगण, यथा स्वामी अभेदानन्द, स्वामी सारदानन्द इत्यादि विद्वत् एवं भक्त मण्डली में सुपरिचित हैं, परन्तु उनके शिष्य पंडित नारायण शास्त्री के विषय में बहुत ही कम लोगों ने सुना होगा।

पंडित नारायण शास्त्री राजस्थान के शेखावाटी प्रदेश के अधिवासी, कृतविद्य एवं निष्ठावान ब्रह्मचारी और ईश्वर के परम भक्त थे। प्रायः पच्चीस वर्षो तक गुरु गृह में रह कर उन्होंने नाना प्रकार के शास्त्रों का अध्ययन किया था। दीर्घकाल तक अध्ययनरत रहकर भी उनकी ज्ञान-पिपासा तृप्त नहीं हुई और वह सुदूर बंगाल में जाकर नवद्वीप नामक नगर में न्याय दर्शन के अध्ययन की लालसा करने लगे। मध्ययुग से ही नवद्वीप भारत के प्रधान शिक्षा केन्द्रों में से एक माना जाता रहा है। संस्कृत के बड़े-बड़े पंडित वहाँ रहकर विभिन्न शिक्षा प्रतिष्ठान चलाते रहे। पन्द्रहवीं शताब्दी में तो

नवद्वीप एक सुप्रतिष्ठित संस्कृत शिक्षा का केन्द्र बन गया था। संसार त्यागने से पूर्व, चैतन्य महाप्रभु इसी नवद्वीप नगरी में ही संस्कृत के शिक्षक रहे। आज के युग में ज्ञान अन्वेषण के लिए देश देशान्तर में जाना एक साधरण सी बात हो गयी है। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के छठे दशक में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जब नारायण शास्त्री शेखाबाटी के मरुस्थल को छोड़कर, गंगा-यमुना के विशाल मैदान को पार कर, पन्द्रह सौ मील दूर सुदूर नवद्वीप में पहुँचे होंगे, तो क्या उन्होंने, इस दुःसाहसिक कार्य द्वारा, अपने असीम साहस और तीव्र ज्ञान पिपासा का परिचय नहीं दिया होगा ?

शास्त्री जी सात वर्षों तक नवद्वीप में न्याय-अध्ययन में तल्लीन रहे। तत् पश्चात् उन्होंने सोचा कि क्यों न शेखाबाटी जाने से पूर्व बंगाल के विभिन्न स्थानों को देख लिया जाय ! और वह कलकत्ता महानगरी में आ पहुँचे। कलकत्ता में आने के पश्चात् ही उन्हें पवित्र गंगा किनारे निर्मित दक्षिणेश्वर के विशाल और भव्य काली मंदिर और उससे संलग्न मनोहर उद्यान के बारे में मालूम हुआ। अतः भ्रमण की इच्छा से ही एक दिन वह दक्षिणेश्वर आ पहुँचे। उस समय दक्षिणेश्वर के काली मंदिर में श्री रामकृष्ण परमहंस रहते थे। मंदिर-परिसर में भ्रमण करते समय पंडितजी श्री रामकृष्ण का दर्शन पा गये तथा उनके देव तुल्य आचरण को देखकर विमोहित हो गये। श्रीरामकृष्ण भी शास्त्री जी को पाकर बहुत आनन्दित हुए और उन्होंने अपने साथी के रूप में उन्हें ग्रहण कर लिया। पंडित जी वहीं रह गये। फिर कितने ही दिन वे दोनों नाना प्रकार के शास्त्रों की विवेचना करने लगे और इसमें मग्न रहने लगे। नदी का जल मानो सागर से आ मिला। भक्त अपने आराध्य देव के चरणकमलों में स्थान पा गया। मरुभूमि की संतान नारायण शास्त्री धन्य हो गये।

इन्हीं दिनों, एक बार, दक्षिणेश्वर के काली मंदिर की प्रतिष्ठात्री रानी रासमणि का, सम्पत्ति के मामले को लेकर मंदिर से संलग्न एक अंग्रेज के बारूद के कारखाने की जमीन को लेकर मुकदमा चल गया। उसी सिलसिले में रानी को न्याय संबंधी सलाह देने "बैरिस्टर" माईकेल मधुसूदन दत्त दक्षिणेश्वर आये। माईकेल मधुसूदन का नाम किसने नहीं सुना है ? वह अपने समय के विख्यात विधि वेत्ता, बुद्धिजीवी, लेखक और कवि भी थे। उनकी रचनाओं में "नील दर्पण" का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में एक विशेष स्थान है। इस पुस्तक के कारण उन्हें ब्रिटिश सरकार के असंतोष का सामना करना पड़ा था। काली मंदिर में आने के पश्चात् जब मधुसूदन दत्त को मालूम हुआ कि श्री रामकृष्ण परमहंसदेव वहीं पर हैं, तो उन्होंने उनसे साक्षात्कार करने के लिए आग्रह किया।

रामकृष्ण परमहंस ईश्वर चिन्तन में सदा मग्न रहा करते थे। उनका बाल सुलभ आचरण बड़ा ही मनमोहक था। बालकों को भाँति अनजान व्यक्ति के सामने जाते वह कभी कभी संकोच किया करते थे। अतः स्वयं न जाकर उन्होंने नारायण शास्त्री को ही मधुसूदन से वार्तालाप करने भेज दिया। फिर स्वयं भी वहाँ आ पहुँचे। वार्तालाप मधुसूदन और शास्त्री के मध्य ही होता रहा। इसी साक्षात्कार के समय शास्त्री जी मधुसूदन से पूछ बैठे कि किस कारणवश उन्होंने स्वधर्म का परित्याग कर ईसाई धर्म को अपना लिया था। विद्वान "बैरिस्टर" ने सीधा उत्तर दिया कि पेट के कारण ही उन्होंने ऐसा किया। यह सुन स्पष्टवादी, सत्यभाषी एवं निर्भीक शास्त्री जी चुप न रह सके और उन्होंने मधुसूदन के इस कार्य को हीन बुद्धि का परिचय बतलाया।

नारायण शास्त्री केवल मात्र एक विद्वान ही नहीं, परन्तु एक उच्च कोटि के साधक भी थे।

उनकी भगवत भक्ति और साधना की श्री रामकृष्ण भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे। परवर्ती काल में दक्षिणेश्वर में आये भक्त जनों से बात करते हुए वे बतलाया करते थे कि भगवान शिव का नाम-जप करते-करते नारायण शास्त्री को भाव समाधि भी हो जाया करती थी। श्री रामकृष्ण नारायण शास्त्री की प्रतिभा व सद्गुणों का सम्मान किया करते थे।

राजा राममोहन राय के पश्चात् केशवचन्द्र-सेन ब्रह्म समाज के प्रमुख और वरिष्ठ नेता हुए थे। विद्वान और भक्त के रूप में जब केशवचन्द्र की ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी तो श्री रामकृष्ण ने केशव से भेंट करने की इच्छा प्रकट की। परन्तु भेंट करने से पूर्व उन्होंने बुद्धिमान नारायण शास्त्री को केशव चन्द्र के पास भेजा और कहा कि वह उनसे मिले और उनके बारे में उन्हें अपनी राय दे। श्री रामकृष्ण बताते है कि, "नारायण ने बताया कि केशव जप सिद्ध है और बहुत अच्छे क्षण में जन्म ग्रहण किया है।" (नारायण शास्त्री को ज्योतिष का भी ज्ञान था। नारायण से यह सब जान लेने के पश्चात् ही श्री रामकृष्ण केशव चन्द्र सेन के मिलने गये थे। यह घटना सन् १८७५ ई० की है।

श्री रामकृष्ण के सान्निध्य में रहते-रहते शास्त्री जी की ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की भावना में दिन पर दिन वृद्धि होने लगी और उन्होंने श्री रामकृष्ण का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। बंगाल आने से पूर्व ही एक बार जयपुर के महाराजा राम सिंह (१८३५-१८८०) ने उन्हें राज पुरोहित का आसन प्रदान करना चाहा, परन्तु शास्त्री जी ने उस पद को अस्वीकार किया था। उन्होंने अपना घर, परिवार और स्वजन, सभी कुछ त्याग दिया। पहले उन्होंने श्री रामकृष्ण से मंत्र दीक्षा ली थी। वैराग्य भाव की प्रबलता के कारण उन्होंने श्री रामकृष्ण से ही संन्यास की भी दीक्षा ले ली। इस प्रकार शास्त्री जी ही रामकृष्ण देव के प्रथम दीक्षा प्राप्त संन्यासी शिष्य बने। इस घटना के बहुत वर्ष बाद ही स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द आदि श्री रामकृष्ण के प्रमुख संन्यासी शिष्यगण दक्षिणेश्वर में आ पहुँचे थे। परमहंस के चरण-सरोज में मरुस्थल राज स्थान की यह एक पुनीत आहुति—यह एक प्रेमार्पण सदा सदा के लिए निवेदित हो कर अजर अमर बन कर रह गया।

संन्यास प्राप्त करने के उपरान्त शास्त्री जी किसी एकान्त स्थान में जाकर घोर तपस्या में लीन होना चाह रहे थे। उन्होंने अपनी इच्छा श्री राम-कृष्ण के समक्ष व्यक्त की। गुरु के अमोघ तथा कल्याणकारी आशीर्वाद को मस्तक पर धारण कर वह कामरूप के वशिष्ठ आश्रम में चले गये और घोर साधना में लीन हो गये।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि श्री रामकृष्ण के सामीप्य में आने के पश्चात् नारायण शास्त्री कभी एक बार शेखावाटी की ओर अवश्य आये होंगे। क्योंकि उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में जब श्री रामकृष्ण के ही एक संन्यासी शिष्य स्वामी अखण्डानन्द जी खेतड़ी आये थे तो खेतड़ी, मलसीसर तथा शेखाबाटी अंचल के कई ऐसे व्य-क्तियों से उनका परिचय हुआ था जो केवल श्री रामकृष्ण देव के नाम से ही भली भाँति अवगत थे। उन्हें श्री रामकृष्ण के बारे में पूर्ण ज्ञान नारा-यण शास्त्री से ही प्राप्त हुआ।

नारायण शास्त्री के अंतिम दिनों के विषय में कहीं से भी कुछ प्रामाणिक तथ्य जानने को नहीं मिलता है। परन्तु ऐसा कहा जाता है कि इस निष्ठावान रामकृष्ण भक्त ने वशिष्ठ आश्रम में ही तपस्या करते-करते अपने प्राण त्याग दिये इस प्रकार वह पवित्र आत्मा श्री रामकृष्ण के चरण कमलों में चिरकाल के लिए विलीन हो गयी।

×

'अबूझमाड़ ग्रामीण विकास प्रकल्प' (१)

स्वामी आत्मानन्द

यह सन् १९७७ के अप्रैल की बात है। मेरे एक मित्र ने, जो तब बस्तर जिले में एक उच्च पदस्थ अधिकारी थे मुझे जगदलपुर आने का निमंत्रण दिया। वैसे तो मैंने पूर्व में कई बार चित्रकूट और तीरथगढ़ के जलप्रपात तथा कुटुम्सर की गुफा देखी थी, पर बारसूर मैंने नहीं देखा था। बारसूर का मंदिर और देवमूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं और कहा जाता है कि वह बाणासुर की राजधानी थी। अत: वह देखने की इच्छा लेकर मैं जगदलपुर आया। मित्र ने मुझे वे सब स्थान तो दिखाये ही, साथ ही वे मुझे नारायणपुर और ओरछा भी ले गये। ओरछा को अबूझमाड़ का प्रवेशद्वार कहा जाता है। वैसे तो नारायणपुर भी अबुझमाड़ का प्रवेश-द्वार है, क्योंकि वहाँ के रवि वासरीय बाजार में भी अनेक अबुझमाड़िया लेन-देन करने आते हैं। तो, मैं ओरछा की बात कह रहा था। वहाँ के साप्ताहिक बाजार का दिन था। अबुझमाड़ में रहने वाले बहुत से नर-नारी बाजार करने आये हुए थे। एक स्थान पर एक वनवासी चिरौंजी देकर नमक ले रहा था। मुझे देखकर अत्यन्त अचरज हुआ कि एक पायली चिरौंजी के बदले उसे एक पायली नमक मिला ! ५० रु० की चिरौंजी के बदले ५० पैसे का नमक !! शोषण का ऐसा विकराल रूप देख अन्त:करण ग्लानि से भर गया कि हम शिक्षितों के रहते आज बीसवीं सदी के अंत में भी शोषण का यह रूप बना हुआ है। हृदय धिक्कार से भर उठा। कितने भोले हैं, ये वनवासी नर-नारी ! शोषित हो रहे हैं, पर उसका भान नहीं है। १००) की शराब पिलाकर शराब का ठेकेदार उसके १०,०००) के सागौन वृक्ष पर कब्जा कर लेता है। लगा कि मनुष्य के समान हिंस्र और कोई पशु नहीं। जिस बर्बरता, क्रूरता और निष्ठुरता से वह असहाय मनुष्य का रक्त चूस सकता है, वैसा कोई पशु नहीं करता। मैंने मित्र से कहा, "आपलोग शासन की ओर से यह शोषण रोकने के लिए कुछ करते क्यों नहीं ? मित्र बोले, "क्या करें, स्वामीजी ! सरकार का तंत्र ही सड़ गया है। योजनाओं में कोई कमी नहीं, पर कार्यान्वयन नहीं हो पा रहा है। जिनको काम सौंपा जाता है, उनके समर्पित न होने के कारण, कोई ठोस काम हो नहीं पाता है।'

ओरछा अबुझमाड़ की परिधि पर है। दक्षिण में नाले को पार करते ही अबुझमाड़ लग जाता है। मित्र ने बताया कि अबुझमाड़ का मतलब वह माड़ (पहाड़ी इलाका) है, जो बूझा (समझा) न गया हो। अर्थात् अजाना पहाड़ी इलाका। लगभग ४,००० वर्ग किलोमीटर में फैला यह क्षेत्र किसी सरकारी खाते में नहीं है न तो राजस्व के, न ही वन के। इसे No Man's Land (किसी की जमीन नहीं) कहा जा सकता है। मित्र ने बताया कि यहाँ भीतर कोई सड़क नहीं है, कभी-कभार शासकीय अधिकारी आते भी हैं तो पैदल। जून से दिसम्बर तक तो पूरा इलाका ही दुनिया से एकदम कटा रहता है। मैंने मित्र से पूछा कि क्या हम लोग भीतर के एक-दो गाँव देख सकते हैं ? उन्होंने हामी भरी और हमें अबुझमाड़ के दक्षिण में ७-८ किलोमीटर की दूरी पर स्थित दो गाँवों में ले गये। आर्थिक विपन्नता की इससे अधिक कोई कल्पना नहीं की जा सकती, जो उन गाँवों में देखी। किसी के तन पर लंगोटी

छोड़कर कपड़ा नहीं । औरतें भी कमर में बस एक हाथ चौड़ा कपड़ा लपेटे हुए मिलीं । घास-फूस की झोपड़ियाँ, अंदर मिट्टी के कुछ टूटे बर्तन, लगभग सभी खाली, किसी में थोड़ा सूखा महुआ-फल, किसी में पसर भर कुटको और वह भी किसी-किसी की झोपड़ी में ही । आदिवासी तो मैंने देखे थे, पर इस प्रकार के आदिम वनवासी नहीं देखे थे । मित्र के साथ दुभाषिया भी था । उससे मैंने कहा-"जरा तुम इन लोगों से पूछो तो कि वे क्या चाहते हैं ।" उसने पूछा । उत्तर मिला—"कुछ नहीं" बार-बार पूछने पर भी उन्होंने यही एक उत्तर दिया । इसी बीच उनका एक मुखिया बोला, 'साब, ऐसा करो कि हमारे गाँव में कोई पुलिस या जंगल का आदमी न आए। और अगर हमको कुछ देना ही चाहते हो तो ओरछा में एक दुकान खोल दो, जहाँ हमें चीजें उचित कीमत में मिल सकें और हम अपनी चीजों को उचित दाम में बेच सकें ।

मालूम पड़ा कि मुखिया ओरछा, नारायणपुर जाता रहता है, नेता लोगों से मिलता रहता है, इसलिए उसमें कुछ जागरूकता आ गयी है और वह 'साब' कहना सीख गया है । उसकी माँग कितनी छोटी सी थी ! यह भी पता चला कि पुलिस और जंगल विभाग के आदमी उन लोगों को नाहक तंग करते हैं—उनसे मुफ्त में शराब और मुर्गा मांगते हैं। इसलिए वे लोग उनकी छाया भी पसंद नहीं करते ।

मित्र के साथ मैं जगदलपुर लौट आया। विचार चक्र शुरू हो गया । मित्र से मैंने पूछा, "अच्छा, सरकार वहाँ रास्ते क्यों नहीं बनवाती है ?" मित्र बोले "सरकारी उच्चाधिकारियों का एक वर्ग ऐसा है जो इसका विरोध करता है। कहता है कि सड़कें बनेंगी, तो शोषण होगा और वहाँ की संस्कृति नष्ट हो जायेगी ।" मैंने कहा, "क्या अभी शोषण कुछ कम हो रहा है ? अभी तो शोषण करने वाले ही भीतर जाते हैं। पर यदि सड़कें बन जायें, तो जो लोग शोषण रोकने में विश्वास करते हैं, वे भी जायेंगे और कुछ काम सही मायने में आदिवासियों के लिए कर पायेंगे। फिर, सड़कें बनाकर अवांछित लोगों को जाने से रोका भी जा सकता है ।" मित्र बोले, "उच्चाधिकारियों का एक बड़ा वर्ग चाहता तो यही है, पर दूसरा वर्ग इस पर हावी है, इसलिए कुछ नहीं हो पा रहा है ।"

लगा कि अबुझमाड़ की समस्या जटिल है । कई प्रकार के प्रश्न मन को मथने लगे । यदि सड़कें न हों, तो न चिकित्सा की व्यवस्था की जा सकती है, न शिक्षा की । भले ही सरकार ने कुछ स्थानों में औषधालय और पाठशालाएँ खोल दी हों, पर चिकित्सक और शिक्षक भीतर जायेंगे कैसे ? यदि एक बार पैदल चले भी जायें, तो वहाँ रहेंगे कैसे ? भाषा की समस्या, आवास और भोजन सामग्री की समस्या, और सबसे बड़ी तो वातावरण की समस्या । जहाँ आबाल-वृद्ध नर-नारी सभी हर समय शराब के नशे में मदहोश रहते हों, वहा ये शिक्षक आदि रहेंगे कैसे ? यह सही है कि सड़क बनने से अवांछनीय लोग आसानी से भीतर जा सकेंगे और हमारे दुर्गुण उनके भीतर संक्रमित होंगे, पर यह भी सही है कि सड़क न बनाकर क्या हम वहाँ के लोगों को चिड़ियाखाने के पशुओं के समान अथवा अजायबघर के नमूनों के समान बनाकर नहीं रख देंगे ? जब सभ्यता की रोशनी फैलती है, तब जो प्रथाएँ और परंपराएँ अनावश्यक होती हैं, वे अपने आप मिट जाती हैं, उससे संस्कृति का नाश नहीं होता । फिर, जब तक इस क्षेत्र के नर-नारियों में हमारे दुर्गुण नहीं जायेंगे, वे हमसे छल-कपट, चोरी-बेईमानी नहीं सीखेंगे, तब तक होड़ में टिकेंगे कैसे ? यह तो इतिहास बतलाता है कि ऐसी कितनी आदिवासी प्रजातियाँ आधुनिक मनुष्य-समाज के सम्पर्क में न आने के कारण मिट ही गयीं । वर्तमान में अन्दमान द्वीप की उंगी (ओंगे)

प्रजाति भी बाहरी समाज के संपर्क के अभाव में खत्म होने के ही कगार पर है। अब यह सुनने में बड़ा अटपटा लगता है कि अबुझमाड़ की आदिवासी प्रजातियों को बने रहने के लिए छल-कपट आदि सीखना होगा, पर बात तो सही है। जब शोषक वर्ग छली-कपटी हो और शोषित वर्ग भोलाभाला, तब यह स्पष्ट है कि शोषित वर्ग धीरे-धीरे मिट जायेगा। उसे बचे रहने के लिए उसे भी शोषक वर्ग के ही समान छली कपटी होना पड़ेगा, उसे जानना पड़ेगा कि शोषण क्या होता है, तभी वह शोषण से अपने को बचाने की चेष्टा करेगा। लड़का जब छोटा होता है, तब छल-कपट से अनिभज्ञ, अत्यन्त सरल, निश्छल और भोलाभाला होता है। पर जैसे-जैसे वह बढ़ता हे, अपने बुजुर्गों से छल-कपट और मिथ्या भाषण आदि सीखता है। यह सीख ही उसे जीवन- संग्राम में लोगों से टक्कर लेने में समर्थ बनाती है। नैतिकता और अध्यात्म उसे इन प्रवृत्तियों पर नियंत्रण पाने की कला बताते हैं। जीवन का यही विकास-क्रम उन भोले भाले वनवासियों पर भी लागू होता है।

ये सारे विचार मस्तिष्क को मथने लगे। जगदलपुर लौटकर उस रात सो नहीं पाया। ऐसा तो लगता कि इन आदिवासियों के उत्थान के लिए कुछ किया जाय, पर रास्ता स्पष्ट दीख नहीं पड़ रहा था। कभी लगता कि हम उनके लिए जो कुछ करना चाहते हैं, उससे उनकी कहीं अच्छी चीजें भी नष्ट न हो जाएँ। अभी उनका समाज पूरी तरह से सहकारी है। उन्होंने भले ही औपचारिक रूप से कोई सरकारी समिति नहीं बनायी है, पर उनका जीवन-ढांचा सही मायने में सहकारी है। सब लोग मिलकर खेती करते हैं और फसल को बाँट लेते हैं। एक दूसरे की झोपड़ियाँ सब लोग मिलकर बनाते हैं। मतलब यह कि गाँव के हर काम में सबका साझा होता है। तो, लगा कि हम उनके लिए जो कुछ करेंगे, उससे उनके जीवन का यह सुन्दरपक्ष कहीं खत्म न हो जाय, वे भी हमारी ही तरह कहीं व्यक्तिपरक न बन जायें। पर उपाय भी तो दूसरा नहीं है। क्या हमारी आधुनिक तथाकथित प्रगति ने हमारी संयुक्त पारिवारिक संस्था को खत्म नहीं कर दिया है? सोचा कि कोशिश यह रहनी चाहिए, जिससे सहकारिता का यह भाव जो उनमें रूढ़ है, बना रहे। पर इस ऊहापोह में उन लोगों को आधुनिक जीवन की सुविधाओं से क्यों वंचित रखा जाय? वे भी अच्छा खायें, अच्छा पहनें, उनके भी अच्छे मकान हों, अच्छे खेत हों, उनके बच्चे भी अच्छी शिक्षा प्राप्त करें, अच्छी नौकरियों में जायें, अपनी वर्त्तमान दशा के प्रति उनमें असंतोष का भाव पैदा हो, पैसा कमाने की ललक उनमें भी जागे, वे भी रेडियो सुनें, टी॰ वी॰ देखें। यही, और मात्र यही, उनको राष्ट्र की जीवन-धारा से जोड़ सकता है।

तो, यह था वह मन्थन, जो १९७९ के अप्रेल मास से शुरू हुआ। रास्ता दिखने में ७ वर्ष लग गये। या यों कहें, नियति ने अपने ही काल-चक्र से घूमकर जो करना वांछनीय और उचित समझा उसे अप्रत्याशित रूप से १९८४से शुरू करा दिया।

वह २९ जनवरी १९८४ का दिन था। रायपुर के रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम में विवेकानन्द जयंती समारोह का उद्‌घाटन था। मुख्य अतिथि के रूप में सुप्रसिद्ध सर्वोदयी एवं समाजसेविका सुश्री निर्मला देशपांडे आमंत्रित थीं और सभा की अध्यक्षता के लिए मध्यप्रदेश के तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री अर्जुन सिंह पधारे थे। अर्जुन सिंह जी ने मुझसे बस्तर जिले में काम करने की बात कही। मैंने अपनी विवशता ज्ञापित की, कहा कि रामकृष्ण मिशन के पास सर्मपित कार्यकर्ताओं की संख्या पर्याप्त नहीं है, इसलिए किसी नये स्थान पर केन्द्र खोलना मिशन के लिए कठिन बात है। उन्होंने जब अधिक जोर दिया तो मैंने उन्हें सुझाव दिया कि आप हमारे मुख्यालय बेलुड़ मठ को इस संबन्ध में लिखें। उस

दिन कार्यक्रम के बाद निर्मला जी ने भी मेरे साथ विचार-विमर्श के लिए कुछ समय बिताने की इच्छा प्रकट की। हम लोग रात में लगभग २-२॥ घंटे बैठे। उन्होंने कहा कि प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी चाहती हैं कि बस्तर जिले में रामकृष्ण मिशन का कार्य हो, क्योंकि वहाँ राष्ट्रीय विचारधारा के बाधक तत्व सक्रिय होते जा रहे हैं। मैंने उत्तर में वही बात कही, जो अर्जुन सिंह जी से कही थी। निर्मला जी ने यह भी बताया कि वे जो मुझसे बस्तर में काम करने का अनुरोध कर रही हैं, यह वास्तव में इंदिराजी का ही अनुरोध है, जो उन्होंने उनके यानी निर्मलाजी के माध्यम से मेरे पास भेजा है। मैं सुनकर संकोच से गड़ गया। मैंने कहा कि यदि इंदिरा जी बेलुड़ मठ के अधिकारियों को राजी कर लें तो मैं बस्तर में काम करने के लिये तैयार हूँ। बात यहीं पर समाप्त हो गयी।

लगभग १॥ महीने बाद मैं १५ मार्च १९८४ को रामकृष्ण मठ-मिशन के सहायक सचिव स्वामी आत्मस्थानन्दजी को कार द्वारा नागपुर से रायपुर ला रहा था। हमारे साथ रायपुर आश्रम के उपाध्यक्ष श्री देवदत्त शुक्ल भी थे, जिन्होंने मध्यप्रदेश शासन के अतिरिक्त कृषि संचालक पद से तभी-तभी अवकाश लिया था। वे बीच में चार वर्ष दण्डकारण्य प्रोजेक्ट में कृषि संचालक के पद पर भी नियुक्त रहे। उस समय उनका मुख्यालय कोंडागाँव था। पता नहीं कैसे बातचीत के सिलसिले में अबुझमाड़ की चर्चा छिड़ी। शुक्लजी ने वहाँ के निवासियों को दुर्दशा का एक प्रभावी चित्र खींचा तथा आत्मस्थानन्दजी से कहा कि स्वामी आत्मनंद के हृदय में वहाँ के लोगों के लिए काम करने की तड़प बनी हुई है। आत्मस्थानन्दजी के पूछने पर मैंने कहा कि एक समय अवश्य मेरी इच्छा थी कि उन लोगों के लिए एक बढ़िया अस्पताल हो, उचित मूल्य का क्रय विक्रय केन्द्र हो तथा उनके लिए ऐसा सुन्दर आवासीय विद्यालय हो कि वहाँ से पढ़कर निकलने पर वे हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी इन तीनों भाषाओं में समान रूप से अधिकार रखने वाले बनें तथा अपने पैरों पर खड़े रहने में समर्थ हों। आत्मस्थानन्दजी बोले, "तुम अब भी, छोटे पैमाने पर ही सही, उन लोगों के लिये कोई काम क्यों नहीं शुरू करते ?" मैंने कहा, "महाराज, अब इस उम्र में एक नया काम हाथ में लेना बड़ा कठिन है।" पर वे मुझ पर जोर डालते रहे कि मैं एक कार्य-योजना वहाँ के लिए बनाकर मुख्यालय को स्वीकृति के लिए भेजूँ। मैंने बेमन से कहा कि ठीक है, देखूंगा, पर मैंने इस दिशा में कुछ किया नहीं।

६ मई, १९८४ को मैं रांची में वहाँ के आश्रम के वार्षिकोत्सव में भाग लेने के लिए गया हुआ था। स्वामी आत्मस्थानन्दजी भी आये हुए थे। मुझे देखते ही बोल पड़े, "क्यों, तुमने अबुझमाड़ के सेवा-कार्य के लिए योजना अभी तक नहीं भेजी ?" मैं बोला, "क्या सचमुच आप इतनी गंभीरता से उसे ले रहे हैं ?" उन्होंने कहा, "हाँ, तुम यहीं पर एक मोटी रूपरेखा बना लो और बेलुड़ मठ यहीं से भेज दो।"

उनका आग्रह देख मैंने एक छोटी सी योजना बनायी। मध्यप्रदेश का नक्शा तो वहाँ मिला नहीं। अंदाज से बस्तर जिला एवं अबुझमाड़ क्षेत्र का एक नक्शा हाथसे खींचा और यह दिखाया कि किस प्रकार से काम शुरू करने का प्रस्ताव है। वह ५ वर्ष में दस लाख रुपये व्यय होने वाली योजना थी। मैंने वह बनाकर वहीं से बेलुड़ मठ भेज दी। वह मई १९८४ की १० तारीख थी।

मैं जून १९८४ की २१ तारीख को दिल्ली में था। वहाँ पुनः आत्मस्थानन्दजी से भेंट हो गयी। उन्होंने बताया कि अबुझमाड़ से संबंधित मेरी योजना बेलुड़ मठ के अधिकारियों द्वारा स्वीकृत हो गयी है। मैं मानों आकाश से गिरा। इतनी जल्दी स्वीकृत भी हो गयी। अब पैसा कहाँ से लाऊँ ?

उन्होंने एक केन्द्रीय मंत्री का नाम लिया और कहा कि वे रामकृष्ण मिशन की ऐसी ग्रामीण और बनवासी सेवा-योजनाओं के लिए बहुत सहायता देते हैं। उन मंत्री महोदय से मैं समय लेकर मिलने के लिए गया। उन्हें मैंने सारी बातें कहीं। उन्होंने उत्तर में कहा, "सो आपकी योजना तो ठीक है। आप एक आवेदन पत्र दे दें, पर इतनी जल्दी तो कुछ हो नहीं पायेगा। अभी ६-७ महीने में लोकसभा चुनाव होंगे। उसमें मुझे व्यस्त रहना पड़ेगा। पता नहीं मुझे फिर से टिकट मिलती है या नहीं। अगर टिकट मिल गयी तो पता नहीं मैं जीतूंगा या नहीं। अगर जीत गया तो पता नहीं मुझे मंत्री बनाते हैं या नहीं और अगर मंत्री बनाते हैं तो पता नहीं यही मंत्रालय देते हैं या नहीं। फिर भी आप आवेदन पत्र भिजवा दें।"

मेरा सारा उत्साह ठण्डा पड़ गया। लौटकर मैंने आत्मास्थानन्दजी को मंत्री महोदय से हुए अपने वार्तालाप की बात बतायी और पूछा कि क्या मैं भोपाल जाकर वहाँ मुख्यमंत्रीजी से मिलूं, क्योंकि वे स्वयं चाहते थे कि रामकृष्ण मिशन बस्तर में कुछ काम करे? उन्होंने हामी भरी। मैं भोपाल आया। यह २३ जून, १९८४ की बात है। तब आदिम जाति कल्याण विभाग के सचिव थे श्री न० व० लोहनी, जो मेरे पूर्वपरिचित थे। उनसे मैंने अपनी अबुझमाड़ सेवा-योजना की चर्चा की। उन्होंने मुझे उत्साह दिया और कहा, "स्वामीजी, आपने यह जो योजना बनायी है, वह बहुत छोटी है। जरा बड़ी योजना बनायें। आपकी यह योजना तो समस्या का एक छोर भी नहीं छू सकेगी।" और उन्होंने श्री के० सी० दुबे को मेरे लिए एक योजना बना देने का भार सौंपा। श्री दुबे मेरे घनिष्ठ मित्र थे तथा उस समय 'ट्राइबल रिसर्च इंस्टीट्यूट' के संचालक थे। उन्होंने लगभग ३६ लाख रु० की एक योजना बना दी। श्री लोहनी ने मुख्यमंत्री श्री अर्जुन सिंह से मेरी भेंट के लिए समय लिया तथा ११ जुलाई १९८४ को मुझे साथ ले मुख्यमंत्रीजी से मिले। मुख्यमंत्रीजी ने यह सारी योजना तत्काल स्वीकृत कर दी और १० लाख रुपये का तदर्थ अनुदान भी साथ ही साथ स्वीकृत कर दिया। मेरे चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

घटनाक्रम जिस तेजी से घूम रहा था, उसके लिए मैं तैयार नहीं था। लोहनी जी ने बाहर निकलकर मुझसे कहा, "स्वामीजी, मुख्यमंत्रीजी ने सारी योजना स्वीकार कर ली और १० लाख रुपये भी दे दिये, फिर भी आप प्रसन्न नहीं दीख रहे हैं, क्या बात है?" मैं बोला, "मैं तो सोच रहा था कि मुख्यमंत्रीजी कहेंगे,अभी हमारे पास उतना पैसा नहीं है, अगले वर्ष देखेंगे, और मैं मना भी रहा था कि वे ऐसा ही कहें, क्योंकि मैं मानसिक रूप से इसके लिए तैयार नहीं था कि काम इतनी जल्दी शुरू हो। फिर अभी हमारे मुख्यालय ने इस ३६ लाख रु० की योजना को स्वीकृति नहीं दी है। वे लोग क्या कहेंगे, यही सब सोचकर मन चिन्ता में पड़ गया है।" जो हो, लोहनीजी ने बस्तर के कलेक्टर को हमें उपयुक्त जमीन देने के लिए भी लिख दिया। इस सबका विस्तार से वर्णन करते हुए मैंने ३६ लाख रु० की योजना वाले कागजात बेलुड़ मठ को भेज दिये। बेलुड़ मठ के अधिकारियों द्वारा यह योजना भी कुछ बहस और रोष प्रकट करके स्वीकार कर ली गयी।

३ सितम्बर १९८४ को हम लोग पहली बार जमीन का चुनाव करने नारायणपुर गये। तब जगदलपुर में श्री डी० डी० शर्मा लोक निर्माण विभाग के अधीक्षण मंत्री थे। वे भी मेरे पुराने परिचितों में से थे। उन्होंने नारायणपुर स्थित अपने अनुविभागीय अधिकारी श्री एस० एल० कुमरावत को निर्देश दिया कि वे हमारी सब प्रकार से मदद करें। श्री कुमरावत हमें धौड़ाई, छोटे डोंगर,

ओरछा तथा और भी दो-एक स्थानों में ले गये। पर हमें कहीं पर भी जमीन पसंद नहीं आयी। अंत में नारायणपुर में ही सोनपुर मार्ग पर स्थित २५ एकड़ का भूमिखंड पसंद आ गया।

हमने शासन से १०० एकड़ जमीन की माँग की थी, जिससे हम अपनी सेवा-योजना को सुचारु रूप दे सकें। अतः इस २५ एकड़ के भूमिखण्ड से लगा हुआ १७ एकड़ का भूमिखण्ड भी हमें दे दिया गया। (क्रमशः

संत मलूक जयंती (१५ अप्रैल) पर

मध्ययुग के महान संत मलूकदास

रामबदन भार्गव

मध्यकाल जिसे भक्तिकाल भी कहा जाता है, मानव जीवन का सबसे मूल्यवान समय था। इस युग में उद्भूत सन्तों ने जो करुणा एवं दया की अमृत वर्षा प्राणि-मात्र पर बरसाई वह वास्तव में इंसान को इन्सानियत से जोड़ने की कड़ी है।

मध्ययुगीन संत परम्परा की शृंखला सं० १३७६ से प्रारम्भ होकर १७०० तक है। उसे दूसरे रूप में यूं कह सकते हैं कि सन्तों की जो परम्परा कबीर से प्रारम्भ होती है वह 'मलूक' तक समाप्त होती है।

दादू, रैदास, भीखा धरमदास, मीरा, चैतन्य, कबीर, मलूक यह सभी मध्ययुगी क्षितिज के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। संत मलूक इस नक्षत्र मण्डल में पूर्ण चन्द्र की भाँति हैं—

निर्गुण मतावलम्बी संत मलूक ने क्षमा, दया, सन्तोप परहित जैसे नैतिक गुणों का बीजारोपण करके समाज की विकृतियों को नष्ट करने के उद्देश्य से आध्यात्मिक चेतना के लिए अमरत्व के गीत गाकर महा करुणा बरसायी।

समाज सुधारक सन्त के रूप में मलूक, कबीरदास से अग्रणी हैं। कबीरदास ने अपनी अटपटी वाणी से झाड़-फटकार द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों का कट्टरपन दूर करने का जो प्रयत्न किया, वह अधिकतर चिढ़ानेवाला सिद्ध हुआ, हृदय को स्पर्श करनेवाला नहीं।

इस कमी को प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख संत मलूक ने अपने लोक प्रचलित दोहों से पूरा किया। इस सन्त की रचनाओं में जो मूल बात देखने को मिलती है वह है 'प्रेम'।

'मलूक' का जन्म सम्वत् १६३१ वैशाख वदी पंचमी अर्थात ११ अप्रैल सन् १५७४ को इलाहाबाद से ५६ किलोमीटर दूर पश्चिमोत्तर गंगा के दाहिने किनारे पर स्थित 'कड़ा' नामक ऐतिहासिक धार्मिक कस्बे में खत्री परिवार में हुआ था।

साधारण परिवार में उत्पन्न मलूक की शिक्षा-दीक्षा कोई खास ढंग से नहीं हो सकी। उन दिनों प्रचारित मकतब एवं मदरसे जैसी शिक्षण संस्थाओं में ही मलूक की शिक्षा किसी गुरु अथवा पुरोहित द्वारा मिली होगी।

मलूक बचपन से ही प्रखर बुद्धि के थे। कविता में रुचि बचपन से ही होने के कारण वे साखियाँ बनाने लगे थे। इनकी मानसिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक चेतना का पूर्ण विकास साधु-सन्तों के संसर्ग

से हुआ। अपने मलूक परिचयी में लिखा है

जो कुछ साधु शिक्षा देही,
सो मलूक हृदये धरि लेही।

परोपकार और दुःख निवारण की भावना मलूक में जन्म से ही विद्यमान थी। वे दूसरों के दुःखों और अभावों को गहराई से महसूस करते थे। भूखों को भोजन कराना, सर्दी से कपकपाते गरीब, साधु, सन्तों को वस्त्र और कम्बल बांटना, कड़ा गंगा स्नान करने आनेवाले यात्रियों के मार्ग मे पड़े हुए कंकड़-पत्थरों को साफ करना उनका प्रतिदिन का कार्य था। दुखी व्यक्तियों के प्रति दयाका भाव ही परमात्मा तक पहुँचाने का सुगम मार्ग मलूक मानते हैं इसीलिए वह कहते हैं।

भूखेहि टूक प्यासेहि पानी।
यहै भगति हरि के मनमानी ।।
दया धरम हिरदै बसै, बोले अमृत बैन।
तेई ऊंचे जानियें, जिनके नीचे नैन ।।

मलूक की वैराग्य प्रवृत्ति को देखकर उनके माता-पिता को बड़ी चिन्ता हुई। साधु-सन्तों की संगति से दूर रखने के लिए उन्होंने उन्हें व्यापार में लगाने की सोचकर कम्बल बेचने के कार्य में लगा दिया। लेकिन दयावान मलूक कुछ कम्बल बेचता तो कुछ गरीब असहाय व्यक्तियों को बाँट देता था। उनके इस रवैये से क्षुब्ध माता-पिता ने मलूक को सामाजिक बंधन में बांधने की बात सोचकर लगभग बीस वर्ष की आयु में ही उनकी इच्छा के विपरीत उनका विवाह कर दिया।

थोड़े समय बाद मलूक के एक कन्या का जन्म हुआ और उसके जन्म के समय ही माता का देहावसान हो गया। इसके पश्चात मलूक ने पुनः दूसरा विवाह नहीं किया। बल्कि लोकसेवा में तल्लीन हो गये।

मलूकदास ने इस भौतिक संसार को निष्फल बताते हुए कहा कि यहाँ के सभी रिश्ते झूठे हैं। सद्गति एवं मोक्ष के लिए व्यक्ति को राम से नाता जोड़ना चाहिए।

राम राम रोम रोम मन चित राम राम
राम राम है भैया राम की दोहाई है।
कहत मलूकदास बात मेरी मान लीजै।
फिर अंतकाल तेरो कोई न सहाई है।

झूठे रिश्तों से दूर रहने का उपदेश देते हुए कहते हैं।

झूठे नाते लोग भुलाना।
माया मोह में बाँध अड़ाना भरम न काहू जाना ।।

मलूक कहते हैं कि राम आश्रम ही सुख का मूल है।

कह मलूक जन ते लियो, राम नाम की ओट
सोवत हों सुख नींद भरी, डारि भरम की पोट ।।

यही बात कबीर ने भी कही है। वे तो राम भक्ति आनंद में इतने आत्मविभोर हो उठे कि स्वयंको अमर मान बैठे थे।

हम न मरब मरिहैं संसारा
हमें मिला जियावन हारा।

मलूक ने धर्म के नाम पर चल रहे पाखण्ड, आडम्बरों, भेद-भाव और संघर्षों की कड़ी भर्त्सना की है। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया। उन्होंने कहा कि ईश्वर एक है जो मंदिर और मस्जिद दोनों में निवास करता है। अपने अज्ञान के कारण हिन्दू-मुसलमानों ने मंदिर और मस्जिद द्वारा बीच में विरोध की दीवारें खड़ी कर ली है।

मन्दिर मस्जिद एक वसत है।
नाये भाव न दूजा।

इसलिए इस भेद भाव को छोड़ो।
दास मलूक कहा मरयो तुम
राम रहीम कहावत एकै।

आपने पत्थर पूजने का घोर विरोध किया। उन्होंने मूर्ति की तुलना में चलते-फिरते दीन-दुखी इंसान की पूजा करना उचित बताया।

जेते देखे आतमा, ते ते सालिगराम।
बोलनहारा पूजिये, पत्थर से क्या काम।।
पाथर रजि बहुत पछितावा।

ना मैं मूरति धरौ सिंहासन, ना मैं फूल चढ़ाऊँ।
जो वह मूरति बोले मोंसे, संजयके अन्वाऊँ।

उन्होंने मात्र बाहरी कर्मकाण्डों द्वारा मोक्ष की सामना करने वालों की आंखें भी खोली हैं।

आतमराम न चीन्हहीं, पूछत फिरै पथान।
काहु मुक्ति न होयगी, केतिक सुनौ पुराना।

मलूकदास ने अहंकार से उद्भूत स्वार्थ से मुक्ति पाने का उपाय अपने आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पित भाव की स्थापना कर विश्वास करते हैं।

दीन दयाल सुनी जगते तब ते हियमें कुछ ऐसी बसो है।
तेरी कहाय के जाऊँ कहाँ तेरे हित की पर चोंच कसी है।
तेरी ही भरोसों 'मलूक' को तेरे समान न दूजो सजी है।
कहौ मुरारि पुकारि कहा हम मेरी हंसी नहि तेरी हंसो है।

आराध्यके प्रतिपूर्ण समर्पण के भाव उनके निम्न दोहे से परिलक्षित होता है।

माला जपौ न कर जपौं, जिभ्या कहौ न राम
सुमिरन मेरा हरि करै, मै पायों विश्राम।'

मलूक अपने समय के संत सम्राट थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों में उनका आदर था। भारत वर्ष के अलावा नेपाल, काबुल में भी उनके शिष्य थे। इस्लाम धर्मान्ध बादशाह औरंगजेब ने स्वयं इस संत के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनके चरणों में माथा टेका था। तत्पश्चात कड़ा का जजिया कर माफकर दिया था तथा सिरायू एवं ख्वाजगीपुर दो गाँव मलूक आश्रम को माफी लिखा था। यह महान सन्त १०८ वर्ष की लम्बी आयुतक इस संसार में रहा और अन्त तक मानव कल्याण में संलग्न रहा।

जे दुखिया संसार में, खोवौ तिनका दुख।
दालिद्दर सौंपि मलूक को लोगन दीजे सुक्ख।।

इस संत का सम्पूर्ण जीवन सत्य-साधना और प्रेम से परिपूर्ण था। इसलिए भारतीय सन्तों की परम्परा में सन्त मलूकदास का जीवन विशेष रूप से अनुकरणीय है। आज उन सन्त की उपसाधना, उपासना, ध्यान, लगन, भक्ति, निष्काम सेवा, ब्रह्मचर्य, इन की भारतीय समाज में महती आवश्यकता है।

लेकिन समय की बेरुखी के कारण इस सन्त का आश्रम एवं इनकी कृतियाँ वर्षों उपेक्षित पड़ी रही। उनकी समाधि और साधना स्थल जो 'कड़ा' में है, बिल्कुल खण्डहर हो चुका है। किन्तु अब उनका पुनर्निर्माण हो रहा है और वह दिन दूर नहीं जब कड़ा सत्य के पिपासुओं के लिए प्रेरणा का केन्द्र बन जायगा।

ऐसे सन्त की कीर्ति को जाग्रत रखना ही हमारी राष्ट्रीय निष्ठा का प्रतीक है। आज आवश्यकता है कि इस सन्त की कृतियों का आकलन हो और भारतीय जन-जीवन उससे लाभान्वित हो। इस सन्त के विश्व प्रसिद्ध निम्न दोहे के साथ उसकी पुण्यतिथि पर उस सन्त को कोटिशः प्रणाम।

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम।

(दैनिक आजः वाराणसी से साभार)

विवेक चूड़ामणि

—स्वामी वेदान्तानन्द

अनुवादक—डा० आशीष बनर्जी

कर्तृत्वादि धर्म अन्तःकरण के हैं, आत्मा के नहीं—

अहंकारः स विज्ञेयः कर्ता भोक्ताभिमान्ययम् ।
सत्वादिगुण योगेन चावस्था त्रयमश्नुते ॥१०४

देहादि इन्द्रियों के संघात से अभिमानी एवं अन्तः करण के द्वारा परिणित उस अंहकार को 'मैं कर्त्ता' 'मैं भोक्ता' इस प्रकार के व्यक्ति को अभिमानी जानना चाहिए। यह अंहकार, सत्व, राजः एवं तमः प्रकृति के तीनों गुणों से संबन्धित होकर जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं को प्राप्त होता है।

विषयाणामानुकूल्ये सुखी दुःखी विपर्यये ।
सुखं दुःखं च तद्धर्मः सदानन्दस्य नात्मनः ॥१०५

विषय समूह के अनुकूल होने पर, उनसे प्राप्त सुख से अहंकार सुखी होता है; और विषयों के प्रतिकूल होने पर, उनसे प्राप्त दुःख से अहंकार ही दुःखी होता है। यह सुख और दुःख अहंकार के धर्म है; सदानन्द स्वरूप आत्मा के धर्म नहीं है।

आत्मार्थत्वेन हि प्रेयान् विषयो न स्वतः प्रियः ।
स्वत एव हि सर्वेषामात्मा प्रियतमो यत ।
तत आत्मा सदानन्दो नास्य दुःख कदाचन् ॥१०६

आत्मा में रहकर, आत्मा द्वारा ही प्रकाशित होने के कारण, विषयसमूह जीव को प्रिय हैं; विषय अपने गुण से प्रिय नहीं होता है। इसी कारण आत्मा स्वरूपःत सबका प्रिय है, इसी कारण आत्मा सर्वदा आनन्दमय है। इसे कभी दुःख नहीं होता।

ऋषि याज्ञवल्क्य मैत्रेयी को कहते है "न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति; आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।" "हे प्रिये, सभी वस्तुओं के लिए सभी वस्तुएँ प्रिय नहीं होतीं; आत्मा के लिए ही सर्ववस्तु प्रिय होती हैं।" वृ, २।४।५।

बृहदारण्यक उपनिषद में दूसरी जगह कहा गया है, "तदेतत् प्रेयः पुत्रात् प्रेयो वित्तात् प्रेयोऽन्यस्मात् सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा।" "यह आत्मा पुत्र से भी प्रियतर है, वित्त से भी प्रियतर है, दूसरी सभी वस्तुओं से प्रिय है; क्योंकि यह आत्मा ही अन्तरतम है।" १।४।८।

यत्सुषुप्तौ निर्विषय आत्मानन्दोऽनुभूयते ।
श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं च जाग्रति ॥१०७

आत्मा सदानन्द होने के कारण मनुष्य सुषुप्ति में विषयों का अभाव रहते हुए भी आत्मानन्द का अनुभव करता है। आत्मा के आनन्द स्वरूप होने का अमृत प्रमाण श्रुति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य (इतिहास) एवं अनुमान चतुर्विध प्रमाण उपस्थिति है।

श्रुति प्रमाण समूहः—"एषोऽस्य परम आनन्दः।' 'यह इसका परम आनन्द है' वृ, ४।३।३२

"आनन्दो ब्रह्मेति व्याजानात्।" [भृगु के पिता ने वरुण के उपदेश पर तपस्या की तथा] "आनन्द, ही ब्रह्म है, यह जाना।"

"अयमात्मा ब्रह्म।" "यह आत्मा ही ब्रह्म है" वृ, २।५।१९

"यो वै भूमा तत् सुखम।" "जो भूमा अर्थात् सर्वाधिक है वही सुख है।" छा, ७।२३।१

प्रत्यक्ष प्रमाणः—गहरी नींद में किसी विषय का अनुभव नहीं होता। अतः निद्रा काल में किसी विषय द्वारा सुख प्राप्ति की कोई सम्भावना नहीं।

परन्तु गहरी निद्रा से जागने पर कोई अनुभव करता है, 'मैं सुख पूर्वक सोया।' आत्मा सुख स्वरूप होने के कारण ही ऐसा अनुवव हुआ।

ऐतिह्य प्रमाणः- ब्रह्मज्ञ पुरुष आत्मा को सुख स्वरूप अनुभव करते हैं यह लोक प्रसिद्ध है।

अनुमान प्रमाणः- आत्मा परम प्रिय होने के कारण सदानन्द है। मनुष्य स्वयं से जितना प्रेम करता है अन्य किसी वस्तु से उतना प्रेम नहीं करता, कर भी नहीं सकता।

अब कारण शरीर का वर्णन होगाः—

अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरनाद्यविद्या
त्रिगुणात्मिका परा।
कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्
सर्वमिदं प्रसूयते ॥१०८

माया या अविद्या ब्रह्म की शक्ति है। उसे अव्यक्त कहा जाता है। वह आदि रहित; सत्व, रजः एवं तमः इन गुणों से युक्त एवं कारण रूपा है। सृष्टि रूप कार्य को देखकर ही तीक्ष्णबुद्धि वाले व्यक्ति इसके अस्तित्व का अनुमान कर लेते हैं। इस माया द्वारा ही समस्त जगत उत्पन्न होता है।

यह माया या अविद्या सांख्य में वर्णित प्रकृति से भिन्न है। सांख्य की प्रकृति स्वतन्त्र है, परन्तु वेदान्त दर्शन के मत में माया ब्रह्म की शक्ति है। "मायास्तु प्रकृति विद्यान्मायिनन्तु महेश्वरम्। तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥" "प्रकृति को माया एवं परमेश्वर को माया की सत्ता तथा प्रकाश सम्पादक सच्चिदानन्द जानो। उस परमेश्वर के अवयव रूप में कल्पित वस्तुओं के द्वारा यह अखिल जगत पूर्ण है।" श्वे, ४।१० 'अव्यक्तातु परः पुरुषो व्यापाकोऽलिंग एव च। यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति॥' 'सर्वव्यापी एवं अनुमान हेतु विवर्जित परमात्मा को जानकर जीव इस जीवन में ही मुक्त हो जाता है एवं मरण के पश्चात पुनः देह प्राप्त नहीं करता, वह परमात्मा माया से भी श्रेष्ठ है।" क, २।३।८

"अव्यक्तात् पुरुषः परः।" "अव्यक्त अर्थात् समस्त कार्य एवं कारण के शक्ति समष्टिरूप माया तत्व से परमात्मा श्रेष्ठ है।" क, १।३।११

प्रकृति की अव्यक्त अवस्था में उसके गुण समूह सम एवं अचंचल रूप में रहते हैं। यह सृष्टि के पूर्व की अवस्था है। प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न कर जब गुणत्रय विभक्त हो जाते है, तब सृष्टि आरंभ होती है।

माया के कार्य द्वारा माया का अस्तित्व अनुमान करने की प्रक्रिया बतायी गयी। किस प्रकार यह अनुमान किया जाता है यह आगे बताया जायेगाः—

सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो
भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो।
महाद्भुतानिर्वचनीय रूपा ॥१०९

वह अविद्या या माया सत्य स्वरूप नहीं है (माया कैसी है यह कहा नहीं जा सकता। और यह यदि सत्य होती तो ब्रह्मज्ञान के फलस्वरूप इसका नाश न होता,। माया को असत् अथवा मिथ्या भी नहीं कहा जा सकता है। (क्योंकि, माया का कार्य दिखाई देता है; यह सम्पूर्ण जगत माया की ही सृष्टि है। मिथ्या वस्तु से कुछ उत्पन्न नहीं हो सकता; बांझ पुत्र जिस प्रकार बांझ के सुख अथवा दुःख का कारण नहीं हो सकता।) माया सत्य अथवा मिथ्या उभय रूप हीं नहीं है। (सत्य एवं मिथ्या एक दूसरे के विरोधी है; अतः दोनों का एक साथ होना सम्भव नहीं।) माया परमात्मा से भिन्न नहीं। (क्योंकि एक ब्रह्म के अतिरिक्त द्वितीय वस्तु नहीं है।) माया ब्रह्म से अभिन्न भी नहीं है। (क्योंकि ब्रह्म निर्विकार है और यह सृष्टि रूप विकार माया का कार्य है।) माया ब्रह्म के सहित एक ही समय में भिन्न एवं अभिन्न दोनों है ऐसा

भी नहीं कहा जा सकता (क्योंकि भिन्न एवं अभिन्न ये दोनों धर्म एक दूसरे से विपरीत होने के कारण एक साथ संभव नहीं है)। माया के कोई अंग है यह भी नहीं कहा जा सकता (क्योंकि अंग होने पर वह दिखाई देता)। माया के कोई अंग नहीं है, यह भी नहीं कहा जा सकता है (क्योंकि, माया अवयव युक्त इस जगत का कारण है।) माया के अंग हैं एवं नहीं भी हैं ऐसा कहना भी ठीक नहीं (क्योंकि यह बात स्वविरोधी है)। अतएव, यह माया अत्यंत आश्चर्यरूपा एवं वाक्यों द्वारा अवर्णनीय है।

माया निवृत्ति के उपाय—

शुद्धाद्वय ब्रह्म विबोध नाश्या
सर्पभ्रमो रज्जुविवेकतो यथा।
रजस्तमः सत्वमिति प्रसिद्धा
गुणास्तदीयाः प्रथितैः स्वकार्यैः ॥११०

यथार्थ ज्ञान के अभाव में रज्जु में सर्पभ्रम होता है; परन्तु रज्जु को रज्जु रूप में जान लेने पर सर्पभय चला जाता है। इसी प्रकार माया जो ब्रह्म को आश्रय कर रहता है, उस शुद्ध एवं अद्वय ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान होने से माया नष्ट हो जाती है। उस माया के सत्व, रजः एवं तमः तीन गुण अपने-अपने कार्य द्वारा—सुख, दुःख एवं मोह के उत्पादक रूप से परिचित हैं।

रजः, तमः एवं सत्व गुण का परिचय उनकी अपनी-अपनी क्रिया द्वारा प्राप्त होता है, ऐसा कहा जा चुका। अब उनकी क्रियाओं का वर्णन किया जा रहा है:—

विक्षेपशक्ती रजसः क्रियात्मिका
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।
रागादयोऽस्या प्रभवन्ति नित्यं
दुःखादयो ये मनसो विकाराः ॥१११

जिस क्रियात्मिका विक्षेपशक्ति से अनन्तकाल तक विषय प्रवृति निरन्तर प्रवाहित हो रही है, वह विक्षेपशक्ति रजोगुण से उत्पन्न होती है। जीव के विषय में आसक्ति एवं सुख दुःख आदि मन के विकार निरन्तर अनन्त काल से इसी विक्षेपशक्ति से निर्गत होते है।

कामः क्रोधो लोभदम्भाद्यसूया—
हङ्कारेर्ष्यामत्सराद्यास्तु घोराः।
धर्मा एते राजसाः पुम्प्रवृत्ति—
र्यस्मादेषा तद्रजो बन्धहेतुः ॥११२

काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, दर्प आदि, असूया ईर्ष्या, मात्सर्य आदि दुखदायक एवं जीव के संसार भ्रमण के हेतुभूत वृत्तिसमूह रजोगुण से उत्पन्न होते हैं। मनुष्य इन काम क्रोधादि के कारण घोर कर्म में प्रवृत्त होता है इसीलिए रजोगुण ही जीव के बन्धन का हेतु है।

एषावृतिर्नाम तमोगुणस्य
शक्तिर्यया वस्त्ववभासतेऽन्यथा।
सैषा निदानं पुरुषस्य संसृते
विक्षेप शक्ते प्रसरस्य हेतुः ॥११३

जिसके द्वारा वस्तु (या चैतन्य स्वरूप आत्मा) जैसी नहीं है वैसी प्रतीत होती है, उसे तमोगुण की आवरण शक्ति कहते हैं। पुरुष के संसार में आवागमन का कारण रजोगुण से उद्भूत जो विक्षेप शक्ति है, यह आवरण शक्ति उसे कार्योन्मुख करती है।

अविद्या की दो शक्तियाँ है—आवरण शक्ति एवं विक्षेपशक्ति। तमोगुण से उत्पन्न आवरण शक्ति वस्तु के स्वरूप को आवृत किये रहती है। जिसके प्रभाव से मनुष्य आत्मा और अनात्मा की भिन्नता को न समझ कर जो जैसा नहीं है उसे वैसा समझने लगता है। यह आवरण शक्ति रजोगुण से उत्पन्न विक्षेपशक्ति को क्रियान्वित करता है।

प्रज्ञावानपि पण्डितोऽपि चतुरोऽप्यत्यन्तसूक्ष्मार्थदृक्
व्यालीढस्तमसा न वेत्ति बहुधा सम्बोधितोऽपि स्फुटम्।
भ्रान्त्यारोपितमेव साधु कलयत्यालम्बते तद्गुणान्
हन्तासौ प्रबला दुरन्ततमसः शक्तिर्महत्यावृतिः ॥११४

जो व्यक्ति मेधावी, शास्त्रज्ञ, चतुर, सूक्ष्मदेहादि का तत्वज्ञ है ऐसा व्यक्ति अनेक युक्तियों की सहायता से उपदिष्ट होने पर भी तमोगुण की आवरण शक्ति द्वारा अभिभूत होने के कारण आत्म तत्व को निश्चित ही नहीं जान पाता। भ्रान्तिवश मिथ्या तथा तुच्छ पदार्थ में गुणों को आरोपित कर उन सब को सुखप्रद मानता है। हाय, चंचल तमो गुण की आवृत्ति शक्ति बहुत ही प्रबल है।

आवरण शक्ति के दो कर्म हैं। प्रथम—पुनः संशय का न होना तथा अन्य ज्ञान द्वारा नष्ट न होना, आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में इस प्रकार के ज्ञान के उत्पन्न होने में प्रतिबन्धक होता है। द्वितीय—विपरीत ज्ञान उत्पादन करता है। आवरण शक्ति के वशीभूत पुरुष को शान्ति नहीं है—

अभावना वा विपरीतभावना
सम्भावना विप्रतिपत्तिरस्याः।
संसर्गयुक्तं न विमुञ्चति ध्रुवं
विक्षेपशक्तिः क्षपयत्यजस्रम् ॥११५

आवरण शक्ति द्वारा वशीभूत पुरुष को अभावना अर्थात विचारों का अभाव त्याग नहीं करता, वह सर्वदा विचारहीन ही रहता है। यदि कभी विचार करता भी है तो वह विपरीत भावना के वशीभूत रहता है—अर्थात देहादि अनित्य अनात्म वस्तुओं को आत्मा समझता है। सत्संग के फलस्वरूप यदि उसे कभी आत्मतत्व के विचार का सुअवसर प्राप्त होता भी है तो वह असम्भावना-बोध द्वारा अभिभूत होता है अर्थात आत्मा के अस्तित्व पर विश्वास करते हुए भी आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में उसे संशय एवं अविश्वास ही रहता है। गुरु के उपदेश एवं वेदवाक्य श्रवण के फलस्वरूप यदि उसे शास्त्र सम्मत ज्ञान होता भी है तथापि उसे विप्रतिपत्ति रह ही जाती है। अर्थात उसे आत्मस्वरूप का यथावत ज्ञान नहीं रहता है। इस प्रकार विक्षेप-शक्ति, आवरण शक्ति के वशीभूत उस व्यक्ति को निरन्तर अनेक प्रकार के दुःख होते हैं।

तमोगुण का स्वभाव—

अज्ञानमालस्यजडत्वनिद्रा
प्रमादमूढत्व मुखास्तमोगुणाः।
एतैः प्रयुक्तो न हि वेत्ति किञ्चिन्
निद्रालुवत्स्तम्भवदेव तिष्ठति ॥११६

अज्ञान, आलस्य, जड़ता, निद्रा, प्रमाद, निंद्रिता आदि तमोगुण के कार्य हैं। इन सबके द्वारा युक्त हुआ पुरुष कुछ नहीं समझता; वह निद्रित या स्तम्भ के समान [जड़वत्] रहता है।

अब सत्वगुण के धर्मसमूह का विचार किया जायेगा :—

सत्वं विशुद्धं जलवत्तथापि
ताभ्यां मिलित्वा सरणाय कल्पते।
यत्रात्मबिम्बः प्रतिबिम्बितः सन्
प्रकाशयत्यर्क इवाखिलं जडम् ॥११७

सत्वगुण विशुद्ध जल के समान है; परन्तु यह रजः और तमोगुण से मिलकर जीव के संसार यातायात का कारण होता है। इस सत्व गुण में शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा प्रति बिम्बित होकर सूर्य के समान समस्त जड जगत को प्रकाशित करता है। त्रिगुणात्मिका माया को ही सृष्टि का कारण बताया गया है। और कहा गया है, रजः और तमोगुण जीव के बन्धन का कारण है। तब सत्व गुण का क्या कार्य है ? सत्व गुण की सहायता से जीव इस जगत में ज्ञान लाभ करता है। दर्पण में सूर्य की किरणें पड़ने के कारण ही दर्पण में हम अन्य वस्तुओं की छाया देखते हैं। इस प्रकार आत्मा बुद्धि में स्थित सत्व गुण के प्रतिबिम्बित होने पर निखिल जड़ जगत का ज्ञान होता है। दर्पण के समान प्रकाश का आधार यदि सत्व गुण न होता तो रजो-तमो गुण का कार्य न चलता; यदि ज्ञान

लाभ की सम्भावना न होती तो मुक्ति भी सम्भव न होती।

> मिश्रस्य सत्वस्य भवन्ति धर्मा—
> स्त्वमानिताद्या नियमा यमाद्याः।
> श्रद्धा च भक्तिश्च मुमुक्षुता च
> दैवी च सम्पत्तिरसन्निवृत्तिः ॥११८

अमानित्व आदि, यम-नियम आदि, श्रद्धा, भक्ति, मुमुक्षुता, विभिन्न दैवी सम्पत्ति, असद् आचरण का त्याग आदि गुण मिश्र सत्व गुण से उत्पन्न होते है।११८

अमानित्वादि = अमानित्व, अदम्भित्व आदि बीस गुणों को श्रीभगवान ने ज्ञानी के लक्षण बताएँ हैं। गीः, १३।८-२२

नियम समूह = शौच, सन्तोष, स्वाध्याय, तप एवं ईश्वर प्रणिधान।

यम आदि = अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह।

महर्षि पतंज्जलि कृत योग सूत्र में यम नियम का वर्णन किया गया है। द्वितीय अध्याय ३०-३२ सूत्र

दैवी सम्पति = अभय, सत्व संशुद्धि आदि छब्बीस सद्गुणों का श्री भगवान ने दैवी सम्पत्ति के नाम से वर्णन किया है। गीः १६।१-३

शुद्ध सत्व गुणों के कार्यः—

> विशुद्धसत्वस्य गुणाः प्रसादः
> स्वात्मानुभूतिः परमा प्रशान्तिः।
> तृप्तिः प्रहर्षः परमात्मनिष्ठा
> यया सदानन्दरसं समृच्छति ॥११९

चित्त की प्रसन्नता, स्वस्वरूप का अनुभव, निरतिशय सन्तोष, तृप्ति, उत्तम आनन्द एवं परमात्म-निष्ठा — ये सभी शुद्ध सत्वगुण के कार्य हैं। परमात्म निष्ठा द्वारा जीव नित्य अविनाशी आनन्द का अनुभव करने में समर्थ होता है।११९

छपरा के महान सन्त

स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन-कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय

अनुवादक- स्वामी विदेहात्मानन्द

उसी समय लाटू महराज ने दक्षिणेश्वर का एक प्रसंग बताया—"सुना है कि एक बार हृदय ने उन्हें (परमहंसदेव को) माँ काली से थोड़ी सिद्धाई माँग लेने को कहा। उन दिनों उनकी ऐसी अवस्था थी कि कोई कुछ भी कहता तो वे उस पर तुरन्त विश्वास कर लेते थे। उन्होंने माँ-काली से वह बात कही, और इसके साथ ही माँ ने उन्हें दिखा दिया कि तीस वर्ष की एक राँड़ सामने बैठकर शौच कर रही है। यह सब देख-सुनकर वे माँ से सिद्धाई माँग नहीं सके। लौटकर उन्होंने हृदय को खूब धमकाया। ''दक्षिणेश्वर में एक दिन रामलाल (दादा) ने विष्णु-मन्दिर के पुरोहित को ठाकुर के लिए (व्याधिमुक्ति की कामना से) तुलसी देने को कहा। वही तुलसी और चरणामृत वे हर रोज दक्षिणेश्वर से भेज देते थे। इसी तरह उनके पन्द्रह-सोलह दिन भेजने के बाद ठाकुर

ने कहा, 'अरे, रामलाल को मेरी देह के लिए तुलसी देने से मना कर आ। देवता को इस प्रकार मनौती मानकर तुलसी देना अच्छा नहीं, यह कह आ।' ... एक दिन नाग महाशय जब काशीपुर में ठाकुर को देखने आये तो उन्होंने सुना कि उन्हें (ठाकुर को) आँवला खाने की बड़ी इच्छा है। (उनकी) इस इच्छा की बात सुनते ही नाग महाशय आँवले की खोज में निकल पड़े। सुना है कि तीन दिनों तक वे कलकत्ते के सभी बाजारों में तलाश करते रहे। इन दिनों उन्होंने स्नान और भोजन तो किया ही नहीं, यहाँ तक कि अच्छी तरह सो भी नहीं सके। बे मौसम ही ताजा आँवला देखकर ठाकुर ने कहा, यह आँवला कौन लाया ?' नाग महाशय चुप बैठे रहे। यह जानकर कि नाग महाशय का नहाना-खाना आदि नहीं हुआ है उन्होंने तुरन्त ही स्नान करके कुछ खाने को कहा। उन्हें भात परोसा गया, पर वे उसे लेकर बैठे रहे, बोले, 'आज एकादशी है। आज और कुछ नहीं खाऊँगा।' ठाकुर ने यह बात सुनकर मुझसे कहा, 'थाली को यहाँ ले आ।' उन्होंने उस थाली से एक दाना उठा लिया। अन्न प्रसाद हो गया है यह सुनकर नाग महाशय को अब कोई आपत्ति न रही। एकादशी के दिन भी उन्होंने उसे ग्रहण किया। उनके समान विश्वास मैंने बहुत कम लोगों में देखा है। वे ठाकुर की ईश्वर-ज्ञान से पूजा करते थे, अतः कभी उनका आसन छूकर नहीं बैठते थे। दक्षिणेश्वर में एक बार उन्हें शाल के पत्ते में प्रसाद दिया गया था। उन्होंने पत्ते सहित उसे खा लिया, प्रसादी पत्ता फेंका नहीं। ... एक दिन ठाकुर को जमरूल* खाने की इच्छा हुई। तब शीतकाल के अन्तिम दिन थे, उस समय जमरूल नहीं मिलते थे। कलकत्ता के बाजार में किसी का भी जमरूल नहीं मिला। देखो, कैसी अद्‌भुत् बात हुई ! उसी दिन एक भक्त ने एक बगीचे में जमरूल के फल लगे देखे और शशीभाई को यह समाचार दिया। शशीभाई उसी दिन जाकर उस बगीचे से जमरूल तोड़ लाये। जमरूल देखकर वे विस्मय में आकर बोले, 'अरे, इस मौसम में जमरूल कहाँ मिला ?' परन्तु ठाकुर उसे खा नहीं पाये। ... एक दिन राम बाबू अस्पताल (मेडिकल कॉलेज के) से बड़े अंग्रेज डॉक्टर को ले आये। साहब-डॉक्टर सब देख-सुनकर कह गया, 'यह तो पादरी लोगों का रोग है। यह ठीक नहीं होगा।' ... कभी-कभी वे (ठाकुर) कुछ खा नहीं पाते थे तब माताजी कपड़े को सलाई जैसा बनाकर उनका गला साफ कर देती थीं। एक बार साफ करते समय थोड़ा सा चुभ गया। माँ तो सिहर उठीं। पर वे सिर्फ इतना ही बोले, 'साफ कर रही हो ? ठीक है करो !' ... माताजी जानती थीं कि अब उनका शरीर नहीं टिकेगा। उन्होंने माँ को बताया था, 'जब देखोगी कि सभी मेरा स्पर्श कर रहे हैं और मैं सभी का छुआ खा रहा हूँ, तो समझ लेना कि मेरा शरीर अधिक दिन नहीं रहेगा।' माताजी और भी बताती थीं, 'गाँव में एक बार उनके बड़े भाई को जब विकार हुआ था, तब वे (ठाकुर) उन्हें रोग के समय पीने को जल नहीं देते थे। इसीलिए उन्होंने कहा था - मरते समय तुम्हारे मुख से रक्त बहेगा, देख लेना। बड़े भाई की बात को उन्होंने मिथ्या होने नहीं दिया।'' इसके साथ ही वे हलधारी दादा की बात भी कह गये—'एक बार हलधारी दादा ने दक्षिणेश्वर में कहा था, 'तेरे गले से रक्त निकलेगा।' सुना है कि ठाकुर के गले से सेम के पत्ते के रंग का खून निकला था। मैंने देखा है कि स्वयं कष्ट उठाकर भी वे अपने आत्मीय-स्वजनों की बात मिथ्या नहीं होने देते थे। सत्य में निष्ठा रहने से ऐसा ही होता है। ... माताजी के समान बुद्धिमती महिला मेरे देखने में नहीं आयी। उनकी सेवा करते-करते हममें से किसी के हताश हो जाने पर वे (माँ) इस बात को

* एक तरह का फल

समझ जाती थीं। फिर योगीन भाई से वे कहला भेजती थीं, 'उसे हताश होने से मना करना। उनका स्वास्थ्य तो आजकल थोड़ा ठीक हो रहा है, घाव का मुख अब बाहर की ओर हो गया है।' इसी प्रकार माताजी हम सबको साहस बँधाती थीं। ""... काशीपुर में एक दिन ठाकुर ने सबको बुलाकर कहा, 'देखो! दलबन्दी न करना। मिलजुल कर रहने पर सभी आनन्द पाओगे और दलबन्दी करने पर दुःख-कष्ट में पड़ोगे।' उस दिन सबने आपस में तर्क-वितर्क किया था और वाद-विवाद के बाद आपस में हाथ भी उठाया था। तर्क करने से ठाकुर किसी को मना नहीं करते थे, परन्तु तर्क करके गुटबाजी करने का वे बड़ा निषेध करते थे।"

ठाकुर की महासमाधि के एक दिन पूर्व की घटना—"दोपहर को एक (बिजली गिरने जैसी) आवाज हुई थी। वह ध्वनि सुनकर माताजी और लक्ष्मीदीदी ठाकुर के कमरे में आ गयीं, लक्ष्मीदीदी बड़ी भयभीत हो गयी थी। उसे डरी हुई देखकर ठाकुर बोले, 'जानती हो न, मुझे उतरा हुआ चेहरा अच्छा नहीं लगता।' यह सुनकर लक्ष्मीदीदी हँसने लगीं।"

अब हम ठाकुर के एक भक्त श्रीयुत वैकुण्ठनाथ सान्याल द्वारा कथित एक घटना बताएँगे—"सन्ध्या के समय चावल की खीर लाये जाने पर उन्होंने कहा, 'मुझे बैठा दो, बैठे-बैठे खानें की इच्छा हो रही है।' हम कुछ लोगों ने मिलकर ठाकुर की इच्छानुसार उन्हें बैठा दिया। हम लोगों में लाटू और बूढ़े गोपालदादा भी थे। ठाकुर ने नरेन्द्रनाथ को संकेत के द्वारा कहा, 'उन लोगों (लाटू और बूढ़े गोपालदादा की ओर इंगित कर) को बिस्तर झाड़ने को कह दो।' यह सुनकर नरेन्द्रनाथ ने कुछ कहा जिस पर ठाकुर ने बताया, 'चावल जो है!' सुनकर नरेन्द्रनाथ बोले, 'आप विधि-निषेध के परे हैं।' ठाकुर ने तब नरेन्द्रनाथ को संकेत से समझाया, 'अरे, ब्राह्मण शरीर है न! इसका ब्राह्मण संस्कार जानेवाला नहीं है।' इस बीच लाटू और बूढ़े गोपालदादा ठाकुर का बिस्तर झाड़ चुके थे। तब ठाकुर ने उँगली से थोड़ी सी खीर अपने मुख में डाली। तदुपरान्त वे बोले, 'भीतर इतनी भूख है कि हंडी भर भर कर भात दाल खाने की मेरी इच्छा होती है। परन्तु महामाया कुछ भी खाने नहीं देतीं।"

अब हम लाटू महाराज से सुनी हुई ठाकुर की महासमाधि का वर्णन प्रस्तुत करते हैं—"जिस प्रकार प्रतिदिन सोने के समय ठाकुर कहते थे, 'हरि ॐ तत्सत्' —उस दिन भी उन्होंने वैसे ही कहा। मैं तब उन्हें पंखे से हवा कर रहा था। रात को लगभग ग्यारह बजे उन्होंने एक गहरी सांस छोड़ी, उसके बाद ही ऐसा लगा मानो उन्हें समाधि लग गयी है। लोरेनभाई ने तब हम सबको 'हरि ॐ तत्सत्' का कीर्तन करने को कहा। काफी देर तक संकीर्तन होने के बाद रात के एक बजे उनकी समाधि भंग हुई, तब उन्होंने थोड़ी सी सूजी की खीर ग्रहण की। शशीभाई ने वह खिला दी। उसके बाद अचानक ही उन्हें (फिर) समाधि लग गयी। यह देखकर लोरेन भाई को न जाने क्या सन्देह हुआ। उन्होंने (बूढ़े, गोपाल-दादा से कहा, 'क्या एक बार रामलाल दादा को बुलाकर ला सकते हैं?' गोपालदादा मुझे साथ लेकर उसी रात दक्षिणेश्वर गये। रामलाल (दादा) रात को ही हम लोगों के साथ आये और देख-सुनकर बोले, 'अब भी ब्रह्मतालु गरम है। तुम लोग एक बार कप्तान (श्री विश्वनाथ उपाध्याय) को खबर करो। भोर होने पर महेन्द्र डॉक्टर को लाया गया। उन्होंने जाँच करके कहा, 'ठाकुर ने देहत्याग किया है।' थोड़ी देर बाद ही ठाकुर के भक्त (नेपाल नरेश के प्रतिनिधि) उपाध्याय आये। उन्होंने ठाकुर के शरीर और

मस्तक पर घी लगाने को कहा। शशीभाई ठाकुर के शरीर पर और वैकुण्ठ बाबू ठाकुर के पाँव में घी की मालिश करने लगे। उससे भी कुछ नहीं हुआ। तब माताजी से नहीं रहा गया, वे ठाकुर के कमरे में आयीं और 'मेरी माँ काली ! तुम मुझे किस दोष के कारण छोड़ गयी !' कहकर विलाप करने लगीं। माँ को रोते देखकर बाबूराम और योगीनभाई वहाँ गये और योगीन-माँ माताजी को पकड़कर कमरे में ले गयीं। इसी बीच कलकत्ते के भक्तों को समाचार मिल गया था। सुना है कि अक्षय मास्टर और हुटको गोपाल ने उस रात कलकत्ता में यह समाचार पहुँचाया था। कलकत्ते के भक्तगण एक-एक कर आने लगे। उन्हें साथ लेकर ठाकुर की एक फोटो ली गयी यह सब करते काफी समय हो गया। तब उसी फूलों से सजाई हुई खाट में (कीर्तन करते हुए) उन्हें श्मशान ले जाया गया। रामबाबू मुझसे बोले, 'तू इस समय थोड़ी देर के लि , बगीचे में ठहर, बाद में अक्षय बाबू (कौन से अक्षय बाबू यह नहीं मालूम) के आ जाने पर तू वहाँ जाना।' इसलिए मैं बगीचे में ही रह गया। माताजी वहीं एक बार रोकर जो चुप हुई तो फिर उनके गले की आवाज सुनने में नहीं आयी। किसी महिला में इतना धैर्य मैंने जीवन भर नहीं देखा। रात को मैं श्मशान में गया और वहाँ देखा कि अनेक लाग गंगा के किनारे चुपचाप बैठे हुए हैं। शशीभाई एक पंखा लेकर चिता के पास बैठा था, उसकी बगल में शरट्भाई था। शशीभाई को मैंने हाथ पकड़कर उठाया. शरट्भाई और लोरेनभाई ने उसे बहुत समझाया, परन्तु शशीभाई ने कुछ कहा नहीं। जानते हो ! उनकी अस्थि और भस्म को एक कलश में भर कर शशीभाई उसे सिर पर रखकर उद्यान में ले आये थे। जिस बिस्तर पर वे सोया करते थे, वहीं पर कलश को रख दिया गया। ·· ···· अगले दिन गोलाप-माँ ने आकर बतलाया कि उन्होंने (ठाकुर ने) माताजी को दर्शन देकर हाथ का कंगन निकालने से मना किया है। उन्होंने कहा है, 'मैं क्या कहीं गया हूँ जी ? यहीं तो हूँ; बस इस कमरे से उस कमरे में गया हूँ।' गोलाप-माँ की बात सुनकर जिन सब लोगों को दुःख हो रहा था, उनका सन्देह मिट गया। तब सभी ने मिलकर कहा, 'सेवा जैसे चल रही थी, वैसे ही चलेगी।' उस दिन निरंजनभाई, शशीभाई, बूढ़े गोपालदादा और तारक दादा वहीं रहे। माताजी के कहने पर मैं और योगीन भाई ठाकुर के भोग की व्यवस्था करने को कलकत्ता गये। उस दिन दोपहर में ठाकुर को भोग दिया गया। सबने मिलकर उनके कमरे में कीर्तन किया था। रात में सूजी की खीर बनाकर उन्हें निवेदित किया गया। फिर राम-नाम सुनाया गया। तदुपरान्त सभी अपने-अपने घर चले गये। मैं, गोपालदादा और तारकदादा वहीं रह गये। ··· तीन-चार दिन बाद माताजी मुझे, गोलाप-माँ और लक्ष्मीदीदी को साथ लेकर एक बार दक्षिणेश्वर गयीं और सन्ध्या के पूर्व ही काशीपुर के उद्यान में लौट आयीं। ··· सुना है कि उस दिन अपराह्न में रामबाबू उद्यान में आये थे। दोपहर को शशीभाई, निरंजनभाई लोरेनभाई, राखालभाई और बाबूराम भाई आये थे। रामबाबू ने आश्रम (अर्थात् काशीपुर का उद्यान-भवन) बन्द कर देने की इच्छा व्यक्त की और सबको अपने-अपने घर लौट जाने को कहा। यह बात सुनकर निरंजनभाई और शशीभाई को बड़ा दुःख हुआ था। उनकी इच्छा थी कि ठाकुर की सेवा जैसे हो रही है, वैसे ही प्रतिदिन चलती रहे। निरंजन भाई तो उसी रात को बलरामबाबू के घर गया। अगले दिन बलरामबाबू माताजी को लाने के लिए स्वयं काशीपुर गये थे। ठाकुर की वस्त्र आदि सब वस्तुएँ माँ के साथ बलराम-बाबू के घर भेज दी गयीं। ··· माताजी बलराम

मन्दिर में चली गयीं। मैं गोपालदादा और तारकदादा उद्यान में ही रह गये। दोपहर को (अन्य) सभी आते और रात होने पर लौट जाते। रामबाबू की बड़ी इच्छा थी उस (ठाकुर की भस्मास्थि से पूर्ण) कलश को काँकुड़गाछी के उद्यान में समाधि देकर मठ बनाने की। (पर) रामबाबू की उस बात को शशीभाई और निरंजन-भाई ने स्वीकार नहीं किया। उन लोगों ने कहा, 'हम कलश नहीं देंगे।' लोरेनभाई ने तब उन लोगों को बहुत समझाया, कहा, 'देखो! कलश को लेकर आपस में झगड़ा-फसाद करना उचित नहीं होगा। हममें से किसी के भी रहने का कोई ठौर ठिकाना नहीं है। और रामदादा तो अपना उद्यान ठाकुर के नाम लिख देने को इच्छुक हैं। यही अच्छा है। हुआ तो वहीं हम लोग भी उनकी पूजा कर लेंगे। मुझे तो लगता है कि उनके (ठाकुर) आदर्शानुसार जीवन गढ़ लेने से ही हम लोगों का उद्देश्य सफल हो जाएगा।'

"जनमाष्टमी के पहलेवाले दिन मैं रामबाबू के घर गया और वहाँ से काँकुड़गाछी के उद्यान में गया। अगले दिन सुबह हम सभी मिलकर कीर्तन करते हुए रामबाबू के घर से काँकुड़गाछी गये। शशीभाई अपने सिर पर रखकर कलश को ले गया। वहाँ कलश के ऊपर मिट्टी डाली जाती देखकर शशीभाई रो उठा और बोला, 'अजी, ठाकुर की देह पर बड़ा आघात लग रहा है।' शशीभाई की बात सुनकर सबकी आँखें गीली हो गयीं। .... श्मशान से लौटते समय उपेनबाबू ('वसुमती' पत्रिका के प्रतिष्ठाता उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय) को साँप ने काट लिया था। नित्य-गोपाल बाबू (ज्ञानानन्द अवधूत) ने लोहा गरम करके उस जगह को दाग दिया। वह घाव तब भी सूखा न था, तो भी उपेनबाबू कीर्तन करते हुए काँकुड़गाछी गये थे। साधुसंग करना उन्हें बड़ा पसन्द था। बगल में किताबें दबाये वे पैदल ही दक्षिणेश्वर जाते थे, काशीपुर भी जाते थे। यह देखकर ठाकुर कहते, 'तुम रथयात्रा भी देखोगे और केले भी बेचोगे।' * ...... काँकुड़गाछी के उत्सव के बाद रामलाल (दादा) ने दक्षिणेश्वर में एक भण्डारा दिया था। वहाँ भी कीर्तन हुआ था। माताजी को ले जाने के लिए रामलाल दादा बलराम बाबू के मकान पर आये थे। परन्तु माँ ने वहाँ जाना पसन्द नहीं किया। दक्षिणेश्वर में रामलाल दादा के दिये हुए भण्डारे में मैं गया था। ...... (ठाकुर की महा-समाधि के पश्चात्) काशीपुर के उद्यान में मेरा मन नहीं लगता था। बीच-बीच में मैं रामबाबू के घर चला जाता था। वहाँ भी मन नहीं लगता तो मैं लोरेनभाई के घर चला जाता। लोरेनभाई कितनी ही बातें कहता। मैं पूछता, 'क्यों भाई लोरेन! तुम्हें तो ठाकुर इतना स्नेह करते थे, सच कहता हूँ—वे तुम्हें छोड़कर नहीं रह सकेंगे।' लोरेनभाई मेरी बात सुनकर हँसने लगता और कहता, 'अरे, वे तुम लोगों को भी छोड़कर नहीं रह सकेंगे। तुझे, शशी को, राखाल को वे कितना प्यार करते थे! तुम्हीं लोगों ने तो उनकी सेवा की है, मैंने भला क्या किया है?' देखो तो! लोरेनभाई में कितनी विनय थी! एक दिन तो एक गुरुभाई ने मेरे सामने खेद प्रकट करते हुए कहा, 'वे (ठाकुर) हम लोगों को ऐसे ही धोखा दे गये।' उनकी बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैंने कह डाला, 'अविश्वासी के लिए वे मर गये हैं। परन्तु विश्वासी के लिए वे विद्यमान हैं। देखा नहीं, (उन्होंने) माताजी को दर्शन दिया। उतना विश्वास रहने पर वे तुम्हें भी दर्शन देते।' ....

(क्रमशः)

* साधु-दर्शन और किताबें भी बेचना—अर्थात् 'एक पन्थ दो काज।' (अनु०)